मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 24 ● वर्ष 3 ● अंक 6 ● अगस्त 2013 पाँच रुपये ● सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

पेरिस कम्यून की सचित्र गाथा 8-9-10

कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है 11

हमारा प्रचार क्रान्तिकारी है – लेनिन 13

एक बार फिर देश को दंगों की आग में झोंककर चुनावी जीत की तैयारी

सम्पादकीय अग्रलेख

घनघोर आर्थिक संकट में घिरी पूँजीवादी व्यवस्था के इससे उबरने के कोई संकेत नहीं मिल रहे हैं। सत्तारूढ़ कांग्रेस-नीत यूपीए सरकार रिकार्डतोड़ भ्रष्टाचार, भीषण महँगाई और बढ़ती बेरोज़गारी के कारण लगातार अलोकप्रिय होती जा रही है, लेकिन मुश्किल यह है कि किसी भी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टी के पास जनता को लुभाने के लिए कोई मुद्दा नहीं है। इसलिए 2014 के लोकसभा चुनाव करीब आने के साथ ही सारे चुनावी मदारी अपने असली एजेण्डे पर लौट रहे हैं। भारतीय जनता पार्टी, यूपीए सरकार की बढ़ती अलोकप्रियता और संकट का लाभ उठाना चाहती है लेकिन भाजपा के नेताओं-मन्त्रियों ने पिछले डेढ़ दशक में केन्द्र की सत्ता और कई राज्यों में सत्ता में रहने के बाद भ्रष्टाचार के ऐसे रिकार्ड बनाये हैं कि इस मुद्दे को उठाने की उनकी हिम्मत ही नहीं है। पूँजीवादी दायरे में आर्थिक संकट से उबरने का रास्ता किसी पार्टी के पास नहीं है। भूमण्डलीकरण की नवउदारवादी नीतियों को कोई भी पार्टी नहीं छोड़ सकती। मुनाफ़े की गिरती दर ने पूँजीपति वर्ग के लिए कल्याणकारी नीतियों को लागू कर पाना और भी असम्भव बना दिया है। ऐसे में, सरकार में बैठे लोग न तो बेरोज़गारी पर काबू कर सकते हैं और न ही महँगाई और भ्रष्टाचार पर। जो भी पार्टी सत्ता में आयेगी उसे भी इन्हीं नीतियों को आगे बढ़ाना है। ऐसे में, किसी भी पार्टी के लिए किसी तरह के लोकलुभावन नारे देना नामुमकिन है। तो फिर, बाँटो और राज करो के अलावा उनके पास चुनाव जीतने का और कोई हथकण्डा बचता ही नहीं है।

गुजरात के कत्लेआम के सरगना नरेन्द्र मोदी को आगे करके भाजपा एक बार फिर से राम मन्दिर, उग्र हिन्दुत्व और इस्लामी आतंकवाद के मुद्दे की तरफ लौट रही है, तो उत्तर प्रदेश में सपा ने मुस्लिम वोटों को बटोरने के लिए उसके साथ नूरांकुश्ती का पुराना खेल फिर शुरू कर दिया है। बसपा जैसी जाति-आधारित राजनीति करने वाली पार्टियाँ दलितवाद के एजेण्डे को एक बार फिर से पूरी ताक़त के साथ उछालने में लग गयी हैं; राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना और उद्धव ठाकरे की शिवसेना फिर से 'मराठी माणूस' का राग अलापने लगी हैं; असम से लेकर गुजरात तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक सभी धर्मों के कट्टरपन्थी और कठमुल्ले सक्रिय हो गये हैं।

पिछले फरवरी में भाजपा के नये अध्यक्ष राजनाथ सिंह ने कुम्भ मेले में घोषणा की कि भाजपा अयोध्या में राम मन्दिर बनाने के प्रति कटिबद्ध है, और वह इसे एक राजनीतिक मुद्दा मानती है, देश के गौरव का मुद्दा मानती है और वह यह मन्दिर बनाकर ही रहेगी। कुम्भ मेले में ही विश्व हिन्दू परिषद के अशोक सिंघल ने कहा कि देश के हिन्दू सरकार को चेतावनी दे रहे हैं कि छह महीने के भीतर सरकार ने अगर एक कानून पास करके अयोध्या में मन्दिर निर्माण की शुरुआत की आज्ञा नहीं दी तो एक बार फिर से हिन्दुओं का एक आन्दोलन शुरू किया जायेगा जो कि 1990 के कारसेवा आन्दोलन से भी बड़ा और भयंकर होगा। नरेन्द्र मोदी को प्रधामंत्री का दावेदार बनाने के बाद से इस अभियान में और तेज़ी आ गयी। गुजरात में कई फर्ज़ी मुठभेड़ों के आरोप में जेल में रह चुके पूर्व मंत्री और मोदी के दाहिने हाथ अमित शाह को उत्तर प्रदेश का प्रभारी बनाने के बाद से भाजपा लगातार प्रदेश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की कोशिशों में जुटी है। इसमें उसे मुलायम सिंह यादव और उनकी पार्टी तथा बेटे की सरकार से पूरी मदद मिल रही है। पिछले 17 अगस्त को विहिप नेता अशोक सिंघल ने मुलायम सिंह के घर पर मुलाकात करने के बादर बयान दिया कि सपा सरकार 84 कोसी परिक्रमा के लिए सहमत हो गयी है। लेकिन अगले ही दिन मुलायम ने इसका खण्डन कर दिया और फिर सरकार ने इस पर रोक लगा दी। उसके बाद फिर वही सब नाटक शुरू हुआ जिसे देखने के अब इस देश के लोग आदी हो चुके हैं। फैज़ाबाद और अयोध्या के आसपास पुलिस की घेरेबन्दी, विहिप के लोगों की गिरफ्तारी और दोनों ओर से उग्र बयानबाज़ियाँ। मज़े की बात यह है कि 84 कोसी यात्रा हर साल की तरह इस बार भी मई में शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो चुकी है। मगर विहिप का मकसद इसे अयोध्या के आसपास के 12 ज़िलों में निकालकर धार्मिक उन्माद पैदा करना था। ऐसे नाटकों से जनता जिस तरह ऊबी हुई है और अतीत में ऐसे कार्यक्रमों का जो हश्र हुआ उसे देखते हुए इस बार भी मामला टायं-टायं फिस्स ही होना था लेकिन सपा ने उसे ऑक्सीजन दे दी है।

असल में, भाजपा के निचले काडर भी पिछले 10 वर्षों से जारी भाजपा की दुर्गत से ऊब गये हैं। पूरे देश में भाजपा कांग्रेस को पटखनी देने के लिए जो भी जुगत भिड़ाती है, वह अन्त में उसके ऊपर ही कहर बरपा कर देती है। भ्रष्टाचार के मुद्दे पर ज़्यादा उछल-कूद मचायी तो व्यापारी गडकरी की बलि चढ़ गयी। सरकारी सौदों और ख़रीद में घोटालों की बात की तो उसके ही कई मन्त्री चपेट में आ गये! इसलिए अब फासीवादी मानसिकता वाले भाजपा काडरों (जिसमें कि छोटे व्यापारियों, व्यवसायियों और उनके लुच्चे-लम्पट लौण्डों की जमात सबसे प्रमुख है) में यह राय बनने लगी है, कि बाकी सारे मुद्दे बेकार हैं और वास्तव में एक ही मुद्दे को लेकर देश में ध्रुवीकरण कराया जाना चाहिए – मुसलमान-विरोध और राम मन्दिर। ज़मीनी धरातल पर भाजपाइयों ने संघ परिवार के बाकी संगठनों के साथ मिलकर ऐसे प्रयास शुरू भी कर दिये हैं, और ऐसे प्रयोग का केन्द्र इस समय उत्तर प्रदेश बन रहा है, क्योंकि भाजपा को यह

(पेज 16 पर जारी)

आसाराम बापू पर बलात्कार का आरोप

आख़िर कब खोलोगे अन्धी आस्था की पट्टी अपनी आँखों से?

आसाराम बापू पर एक बार फिर एक किशोरी के साथ बलात्कार का आरोप लगा है। इससे पहले भी उस पर बच्चों के साथ दुष्कर्म के आरोप कई बार लग चुके हैं। ये वही आसाराम बापू है जिसने यह बेहूदा बयान दिया था कि 16 दिसम्बर को दिल्ली में जिस लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना घटी, वह इसके लिए खुद ज़िम्मेदार थी; क्योंकि उसने इन पाशविक अपराधियों के सामने घुटने टेककर, हाथ जोड़कर दया की भीख माँगने की बजाय लड़ना और मुक़ाबला करना पसन्द किया।

साधु-सन्तों, तांत्रिकों आदि द्वारा स्त्रियों के साथ दुष्कर्म की शिकायतें अनगिनत हैं। मगर ऐसी ज़्यादातर शिकायतें दबा दी जाती हैं या सबूत न मिलने, गवाहों के मुकर जाने आदि के कारण कोई कार्रवाई नहीं होती। अन्धश्रद्धा के मारे शिष्यों और बाबाओं से हित सधाने वाले चेटे-चाँटियों की तादाद भी काफी बड़ी होती है और धर्म के ठेकेदार भी उनके साथ खड़े हो जाते हैं। इसलिए उन पर लगे दुष्कर्म के आरोपों को साज़िश या छवि धूमिल करने का प्रयास कहकर मामला रफा-दफा कर दिया जाता है। ऐसे अनगिनत धार्मिक बाबा और धर्म का व्यापार करने वाले ठेकेदार हैं जिन पर बलात्कार, हत्या, अपनी भक्तिनों के यौन-उत्पीड़न, आश्रमों में वेश्यालय चलवाने आदि जैसे आरोप हैं!

आसाराम बापू पर यह पहला आरोप नहीं है। पहले भी उस पर बच्चों के साथ दुष्कर्म का आरोप लगा था। 2008 में उसके आश्रम के बाहर दो बच्चों के मृत पाये जाने पर भी ऐसे

(पेज 16 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

हमारा प्रचार क्रान्तिकारी है

(पेज 13 से आगे)

की राह में खड़ी की जाने वाली किसी भी बाधा की भर्त्सना की जाये और उसका प्रतिरोध किया जाये और यह भी सर्वविदित है कि पूँजीपतियों और उनके आम्स्टर्डमपन्थी भाड़े के टट्टुओं का मकसद ही यह होता है कि हर क़िस्म के कामकाजू समझौतों में मज़दूरों के हाथ बाँध दिये जायें। इसलिए यह कम्युनिस्टों का कर्तव्य है कि वे इस तरह के समझौतों की असलियत के बारे में मज़दूरों को आगाह करें। कम्युनिस्ट ऐसे समझौतों की वकालत करके, जिनसे मज़दूरों की राह में बाधा न पड़े, इस काम को सबसे अच्छे ढंग से अंजाम दे सकते हैं।

ट्रेड यूनियन संगठनों द्वारा बेरोज़गारी, बीमारी और अन्य मामलों में हासिल की गयी सुविधाओं के बारे में भी यही किया जाना चाहिए। संघर्ष-कोष की स्थापना और हड़ताली तनख़्वाह देना आदि अपने आप में ऐसे क़दम हैं जिनका समर्थन किया जाना चाहिए।

इसलिए, ऐसी कार्रवाइयों का उसूली तौर पर विरोध करना ग़लत होगा। लेकिन कम्युनिस्टों को मज़दूरों के सामने यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि इस तरह के कोषों के संग्रह करने और उनके इस्तेमाल करने के आम्स्टर्डमपन्थी नेताओं द्वारा बताये गये तरीक़े मज़दूर वर्ग के सभी हितों के ख़िलाफ़ हैं। बीमारी के लाभ (सिक बेनिफ़िट) वग़ैरह के सम्बन्ध में कम्युनिस्टों को मज़दूरों की तनख़्वाह से उसका एक हिस्सा लेने की व्यवस्था तथा स्वेच्छा के आधार पर जमा किये जाने वाले कोषों के सम्बन्ध में लागू की गयी सभी अनिवार्यता की शर्तों को ख़त्म करने पर ज़ोर देना चाहिए। फिर भी कुछ ट्रेड यूनियन सदस्य स्वयं अंशदान करके बीमारी के लाभ हासिल करने के इच्छुक हों तो इसे इस लिए सीधे रोका नहीं जाना चाहिए कि इससे लोगों द्वारा हमें ग़लत समझे जाने का अन्देशा रहेगा। घनीभूत व्यक्तिगत प्रचार द्वारा ऐसे मज़दूरों को उनकी निम्न पूँजीवादी धारणाओं से मुक्त करके अपने पक्ष में करना आवश्यक होगा।

संशोधनवादी और सुधारवादी ट्रेडयूनियन नेताओं का ठोस ढंग से पर्दाफ़ाश करो

26. सामाजिक जनवादियों और निम्न पूँजीवादी ट्रेड यूनियन नेताओं तथा विभिन्न लेबर पार्टियों के नेताओं के ख़िलाफ़ संघर्ष में समझाने-बुझाने से अधिक कामयाबी की उम्मीद नहीं की जा सकती। उनके ख़िलाफ़ संघर्ष अधिकतम ज़ोर-शोर के साथ चलाया जाना चाहिए और इसका सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि उन्हें उनके अनुयाइयों से अलग कर दिया जाये और मज़दूरों को इन ग़द्दार समाजवादी नेताओं के, जो पूँजीवाद के हाथों में खेल रहे हैं, असली चरित्र से परिचित करा दिया जाये। कम्युनिस्टों को इन तथाकथित नेताओं को बेनकाब करने की पुरज़ोर कोशिश करनी चाहिए और इन पर सर्वाधिक प्रचण्ड तरीक़े से हमले करने चाहिए।

इन आम्स्टर्डमपन्थी नेताओं को सिर्फ पीला कह भर देना किसी भी हालत में काफ़ी नहीं है। लगातार तथा व्यावहारिक उदाहरणों के द्वारा इनके "पीलेपन" को प्रमाणित करना होगा। ट्रेड यूनियनों में, लीग आफ़ नेशन्स के अन्तरराष्ट्रीय श्रमिक ब्यूरो में, पूँजीवादी मन्त्रिपरिषदों में तथा प्रशासनों में उनकी गतिविधियों में, सम्मेलनों और संसदों में उनके ग़द्दारी भरे भाषणों में, उनके ढेरों प्रेस वक्तव्यों और लिखित सन्देशों में झाड़े गये उपदेशों में और सबसे अधिक, (वेतन में बेहद मामूली बढ़ोत्तरी तक के संघर्ष सहित) सभी संघर्षों में उनके ढुलमुलपन और हिचकिचाहट भरे रवैये में हमें लगातार ऐसे अवसर मिल जायेंगे कि सीधे-सादे भाषणों और प्रस्तावों के द्वारा उनके ग़द्दाराना बर्ताव का पर्दाफाश किया जा सके।

फ्रैक्शनों को अपनी व्यावहारिक हिरावल गतिविधियाँ सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करनी चाहिए। कम्युनिस्टों को ट्रेड यूनियनों के उन छोटे पदाधिकारियों द्वारा किये जाने वाले बहानों को अपने प्रगति अभियान में बाधा नहीं बनने देना चाहिए, जो अपने नेक इरादों के बावजूद सिर्फ अपनी कमज़ोरी के कारण नियम-क़ानूनों, यूनियन के फ़ैसलों और अपने वरिष्ठ पदाधिकारियों के निर्देशों की आड़ लिया करते हैं। इसके विपरीत, उन्हें नौकरशाही मशीनरी द्वारा मज़दूरों के रास्ते में खड़ी की गयी सभी वास्तविक और काल्पनिक बाधाओं को हटाने के मामले में निचले अधिकारियों द्वारा सन्तोषप्रद कार्य पर ज़ोर देना चाहिए।

कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है

(पेज 11 से आगे)

रिटायर हुए नेता होते हैं जो आलीशान महलनुमा राष्ट्रपति भवन में रहते हैं जिसकी देखरेख, रखरखाव में और बुजुर्ग राष्ट्रपति महोदय की सुरक्षा के तामझाम में प्रतिदिन जनता की गाढ़ी कमायी से अर्जित लाखों रुपये खर्च होते हैं। राष्ट्रपति महोदय का काम महज़ इतना होता है कि वे संसद द्वारा पास किये गये बिलों और मन्त्रिमण्डल द्वारा लिये गये फैसलों पर दस्तख़त करें, भारतीय राज्यसत्ता के प्रधान के तौर पर विदेशों का भ्रमण करें और सरकार द्वारा तय किये भाषण का पाठ करें। साफ है राष्ट्रपति का पद एक रबर स्टैम्प से ज़्यादा कुछ नहीं है। ऐसे देश में जहाँ 20 करोड़ से भी ज़्यादा लोग झुग्गी झोपड़ियों में रहते हैं और उससे भी ज़्यादा लोग फुटपाथ पर सोते हैं, एक रबर स्टैंप का काम करने वाले महामहिम राष्ट्रपति महोदय के लिए जनता के खून पसीने की कमायी से अर्जित रोज़ाना लाखों रुपये खर्च एक निर्लज्ज स्तर की विलासिता है! लेकिन यह विलासिता पिछले 63 सालों से बदस्तूर ज़ारी है।

शासन प्रशासन के फैसले लेने और उनको अमल में लाने की ज़िम्मेदारी मन्त्रिमण्डल की होती है जिसका नेतृत्व प्रधानमन्त्री करता है। लेकिन सरकारें तो आती जाती रहती हैं, शासन प्रशासन चलाने का असली काम तो सचिवालय से लेकर ब्लॉक तक फैले विराट नौकरशाही तन्त्र करता है जिसको स्थायी कार्यपालिका कहते हैं। ग़ौरतलब है कि नौकरशाही के इस विराट तन्त्र की नींव भी औपनिवेशिक ब्रिटिश सत्ता के जमाने में ही रखी गयी थी और आज़ादी मिलने की छह दशकों बाद भी नौकरशाही की संरचना, उसके काम करने का तौर-तरीके और नौकरशाहों की मानसिकता में औपनिवेशिक अतीत की प्रेतछाया मौजूद है। अपने चरित्र से यह नौकरशाही उतनी ही जनविरोधी है जितनी औपनिवेशिक जमाने में! मन्त्रिमण्डल, नौकरशाही एवं भारतीय राज्यसत्ता के अन्य अंगों-उपांगों की सविस्तार चर्चा हम इस लेख की अगली कड़ी में करेंगे।

(अगले अंक में जारी)

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

मज़दूर बिगुल **'जनचेतना'** की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782**
- **जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)**
- **114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273009**
- **जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09971158783**
- **जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807**

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलन कर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित)

करावल नगर मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में दिल्ली के बादाम मज़दूरों की शानदार जीत

असंगठित क्षेत्र के बादाम मज़दूरों ने 60 से ज्यादा फैक्ट्रियों में 6 दिन की हड़ताल से मालिकों को झुकाया

दिल्ली के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र करावलनगर में स्थित बादाम सफाई (प्रसंस्करण) के 60 से ज्यादा गोदाम (फैक्ट्री) हैं, जिनमें लगभग 5000 मज़दूर परिवार समेत काम करते हैं। बादाम प्रसंस्करण का इलाका करावलनगर के प्रकाश विहार, न्यू सभापुर गुजरान, भगत सिंह कॉलोनी, अंकुर एंकलेव, सादतपुर आदि में यानि 5-6 किलोमीटर के दायरे में फैला हुआ है। कैलीफोर्निया, आस्ट्रेलिया, कानाड़ा में पैदा होने वाला बादाम सफाई के लिए मुम्बई पोर्ट से होता हुआ दिल्ली की खारी बावली मार्केट से करावलनगर में आता है। नब्बे के दशक से जब से उदारवाद की नीतियाँ लागू की गयीं, उसी समय से यह उद्योग धीरे-धीरे बसने लगा। आज यह बादाम प्रसंस्करण का सबसे बड़ा क्षेत्र बन गया है, जिसका टर्नओवर अरबों में होता है। असंगठित क्षेत्र के इस बड़े उद्योग में ज्यादातर महिलाएँ हैं और मज़दूरों की बड़ी आबादी बिहार से है।

(बादाम उद्योग की कई रिपोर्टें 'बिगुल' के पुराने अंकों में देख सकते हैं)

हड़ताल की ज़मीन का तैयार होना:-

ज्ञात हो दिसम्बर 2008 में बादाम मज़दूरों की 16 दिन की हड़ताल चली थी जिसमें मज़दूरों की आंशिक जीत हुई थी। उसके बाद बादाम उद्योग में मशीनीकरण हुआ और बड़े पैमाने पर मज़दूरों की छँटनी हुई, मज़दूरों की एकता कमज़ोर हुई, और बड़े पैमाने पर पैदा हुई बेरोजगारी का फायदा मालिकों ने उठाया। मज़दूरों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुल्म भी बढ़ गया । मज़दूरों की अतिरिक्त आबादी धीरे-धीरे दूसरे उद्योग में काम करने लगी और मज़दूरों की एक निश्चित संख्या बादाम उद्योग में काम करने लगी। पिछले तीन-चार साल में महंगाई लगभग दोगुनी हो चुकी है और मज़दूरों से तीन साल पुराने रेट पर ही काम कराया जा रहा था।

19 जून से हुई हड़ताल की सुगबुगाहट इलाके में पिछले दिनों हुई रैली के बाद शुरू हो गई थी। 8 मार्च को अंतरराष्ट्रीय स्त्री दिवस पर इलाके के विभिन्न पेशों के मज़दूरों ने अपना ज्ञापन बनाकर श्रम विभाग को सौंपा था। उसके बाद मज़दूर अधिकार रैली निकाली, इसमें बादाम मज़दूर, भवन निर्माण मज़दूर, फैक्ट्री मज़दूर, स्त्री मज़दूर शामिल थे। मज़दूरों ने अपनी न्यायपूर्ण माँगों को लेकर इलाके के विधायक मोहन सिंह बिष्ट के घर का घेराव किया था और माँगपत्रक के साथ ज्ञापन सौंपा था। इस सबके दौरान इलाके के अन्य मज़दूरों में भी लड़ने का हौसला पैदा हुआ।

दूसरी तरफ 2008 की हड़ताल के बाद से ही यूनियन द्वारा मज़दूर पाठशालाओं का चलाना और उनके बीच राजनीतिक प्रचार लगातार चलाते रहना, सुधार के कामों जैसे बच्चों को पढ़ाना, बच्चों का स्कूल में दाखिला करवाना, बीमार पड़ने पर दवा इलाज में मदद करना या मालिकों द्वारा पैसा रोके जाने की स्थिति में मज़दूरों को उनके पैसे दिलवाना आदि काम जारी थे। किसी किस्म के दमन के ख़िलाफ यूनियन का संघर्ष जारी रहा।

2008 की हड़ताल के बाद 'बादाम मज़दूर यूनियन' ने इलाके के दूसरे पेशों के मज़दूरों को संगठित करने और व्यापक पैमाने पर अपनी इलाकाई एकता कायम करने की ज़रूरत को समझा और इस दिशा में काम करते हुए 23 मार्च 2010 को 'बादाम मज़दूर यूनियन' का नाम बदल कर 'करावल नगर मज़दूर यूनियन' रखा गया ताकि इलाके के अलग-अलग पेशे के मज़दूरों की व्यापक इलाकाई एकता बनायी जाय। इलाके में मौजूद पेपर प्लेट की 7 फैक्ट्रियों में 2011 की हड़ताल में पेपर प्लेट मज़दूरों का साथ इलाके के अन्य पेशे के मज़दूरों ने भी दिया, जो कि हड़ताल की सफलता का एक कारण था। इन सबके कारण के.एम.यू. ने इलाके के मज़दूरों के एक हिस्से में अपनी पकड़ को मजबूत बनाया।

हड़ताल की शुरूआत के तात्कालिक कारक:-

बढ़ी हुई महंगाई ने मज़दूरों का जीना दूभर कर दिया था और कभी-कभी काम करने के बाद समय से पैसे नहीं मिलने से मज़दूरों के अन्दर गुस्सा भी बहुत था। इसी दौरान भगतसिंह कॉलोनी की कुछ बादाम फैक्ट्रियों में पैसे का विवाद हुआ। 28-29 मई को मज़दूरों ने एक फैक्ट्री में काम करना बन्द कर दिया। उसके बाद एक-दो और फैक्ट्रियों में मज़दूरों ने काम बन्द कर दिया और बादाम तोड़ने का रेट 2 रुपये करने की माँग रखी। इस दौरान कुछ फैक्ट्रियों में अभी काम पूर्ण रूप से बन्द नहीं हुआ था। कुछ मालिकों का काम थोड़ा प्रभावित हुआ था। जून में यूनियन ने मज़दूरों की एक बैठक बुलायी थी, जिसमें यह फैसला हुआ था कि जब तक व्यापक मज़दूर आबादी लड़ने के लिए तैयार नहीं होती तब तक हड़ताल सफल नहीं हो सकती। इसलिए अभी दूसरी फैक्ट्रियों के मज़दूरों को भी साथ लिया जाय और मज़दूरों का माँगपत्रक बनाकर उसपर सबको सहमत किया जाय। यूनियन में एक राय यह भी आयी थी कि दिसम्बर के माह में हड़ताल की जाय, जब काम सबसे तेज होता है और उसके लिए अभी से तैयारी की जाय। कुछ फैक्ट्रियों में आंशिक रूप से काम बन्द रहा लेकिन इसका प्रभाव धीरे-धीरे दूसरी फैक्ट्रियों के मज़दूरों पर भी पड़ने लगा। 15 जून को मज़दूरों की एक बड़ी संख्या यूनियन कार्यालय आयी और बताया कि बादाम मज़दूरों की बड़ी संख्या अब हड़ताल के पक्ष में है। इसके बाद यूनियन ने हड़ताल के माँगपत्रक को तैयार किया जिसमें बादाम सफाई का रेट 1 रुपये से 3 रुपये किया जाय, वेतन का भुगतान माह के पहले सप्ताह में हो, मशीन से तोड़ने का रेट 8 रुपये प्रति बोरी हो, सभी फैक्ट्रियों में साफ पीने के पानी और शौचालय की व्यवस्था हो और सभी मज़दूरों को पहचान कार्ड व वेतन के साथ वेतन पर्ची मिले आदि प्रमुख माँगें थीं। इन मांगों का मांगपत्रक बनाकर सभी बादाम मालिकों तक पहुंचा दिया गया। करावल नगर मज़दूर यूनियन ने 19 जून की सुबह बादाम मज़दूरों की आम सभा बुलायी और उसी सभा में आम हड़ताल का ऐलान किया।

हड़ताल के दौरान का घटनाक्रम:-

19 जून की सुबह मज़दूरों की सभा में हड़ताल की औपचारिक घोषणा कर दी गई थी। इलाके में मज़दूरों की बड़ी रैली निकाली गयी जिसमें बड़ी संख्या में स्त्री मज़दूर एवं बच्चे भी थे। रैली में बादाम मज़दूरों के अलावा भवन निर्माण मज़दूर व अन्य पेशों से जुड़े मज़दूर भी शामिल हुए और इलाके के मुख्यत: बादाम उद्योग क्षेत्र में प्रचार कर सभी मज़दूरों को फैक्ट्री न जाने व हड़ताल स्थल पर इक्ट्ठा होने का आह्वान किया गया। रैली के बाद 20-25 की संख्याओं वाले महिला एवं पुरूष मज़दूरों के दस्ते बनाये गये जो इलाके के मज़दूरों को एकजुट करने तथा जिस भी फैक्टरी में चोरी-छिपे काम करवाया जा रहा था उसे बन्द करवाने के लिए गये। 2008 की हड़ताल 16 दिन चली थी जिसके अन्त में मज़दूर टूटने लगे थे और एक आंशिक जीत पर समझौता करना पड़ा था। उससे सीख लेते हुए यूनियन ने इस ओर ध्यान दिलाया कि इस बार की हड़ताल महीनों चल सकती है और जिनके घर में खाने की समस्या आयेगी उनके लिए सामूहिक रसोई चलायी जायेगी लेकिन हड़ताल तब तक जारी रहेगी जब तक एक सम्मानपूर्ण समझौता नहीं हो जाय। सभा में उपस्थित सभी मज़दूरों ने लम्बी लड़ाई का हाथ उठाकर गर्मजोशी से समर्थन किया। लम्बी हड़ताल की योजना ने मालिकों को मनोवैज्ञानिक रूप से भयभीत कर दिया था क्योंकि बाजार में बादाम की माँग जोरों पर थी। दूसरा, बादाम को ज्यादा दिन तक फैक्ट्री में रख नहीं सकते, क्योंकि बादाम के खराब होने की सम्भावनाएँ थी। तीसरी बात, जो छोटे मालिक थे जिन्होंने फैक्ट्री किराये पर ले रखी हैं और इनकी पकड़ बाजार में बहुत कमजोर है ये ज्यादा परेशान थे।

20 जून से स्त्री मज़दूरों की अगुवाई में मज़दूरों के दस्तों ने उन फैक्ट्रियों का घेराव करना शुरू किया जहाँ पर थोड़ा बहुत काम चल रहा था, इस दौरान मालिकों और माहिलाओं में छिटपुट झड़पें भी हुई लेकिन मज़दूरों की बड़ी संख्या के सामने मालिकों और उनके चमचों की एक न चली। इलाके में हो रही हड़ताल की खबर सुनकर पुलिस सकते में आयी और यूनियन के लोगों को डराने धमकाने और मालिकों की सेवा के लिए अपनी मौजूदगी इलाके में दिखाने लगी। दूसरी तरफ पुलिस के आला अधिकारी इस पूरे मसले का शान्तिपूर्ण समाधान चाह रहे थे क्योंकि यह पूरा उद्योग ही ग़ैर-कानूनी है और इस ग़ैर-कानूनी काम को इलाके में जारी रखने के लिए इनको मोटी रकम मालिकों से नियमित तौर पर मिलती भी है। हड़ताल की खबर पहले दिन से कुछ अखबारों में आनी शुरू हो गयी जिससे पुलिस-प्रशासन पर भी एक दवाब बन रहा था। वे चाहते थे कि इस मुद्दे को जल्द से जल्द निपटाया जाय नहीं तो प्रशासन की ''छवि'' खराब होगी। 20 जून की शाम को मालिकों के एक गुट ने वार्ता के लिए 21 की सुबह बुलाया। अगले दिन सुबह जब वार्ता शुरू हुई तो इलाके का एस.एच.ओ. भी वार्ता में आया था। मालिक सफाई का रेट 1.50 रुपये देने तथा अन्य कुछ माँगों पर सहमत हुए। किन्तु यूनियन की तरफ से रखा गया कि सफाई का रेट कम से कम 2 रुपये तथा अन्य सभी मांग जिसमें वेतन का भुगतान माह के पहले सप्ताह में हो, मज़दूरों को वेतन पर्ची दी जाय, प्रत्येक फैक्ट्री में पीने के साफ पानी व शौचालय की व्यवस्था हो। यूनियन द्वारा 2 रुपये की घोषणा का फैसला मज़दूरों की सहमति से लिया गया था। इसके अलावा अन्य माँगों पर भी जब तक स्पष्ट निर्णय नहीं होता तब तक हड़ताल जारी रहेगी। वार्ता विफल होने के बाद प्रशासन की तरफ से एक और प्रस्ताव आया जिसमें इलाके के एस.सी.पी. के दफ्तर में मालिकों और मज़दूरों के प्रतिनिधियों को वार्ता के लिए 2 बजे बुलाया। वहाँ भी वार्ता में कोई हल नहीं निकला। 22 की सुबह फैसला लिया गया कि हड़ताल चौक पर बैठने के बजाय किसी भी मालिक की फैक्ट्री के सामने बैठा जाय। इसके बाद वासुदेव मिश्रा की फैक्टरी के सामने बैठने का फैसला हुआ। ज्ञात हो 2008 की हड़ताल में वासुदेव मिश्रा ने कुछ महिलाओं पर हाथ उठाया था जिसका जवाब महिलाओं ने चप्पल से दिया था और इस केस में वासुदेव मिश्रा को माफीनामा लिखकर मुकदमा बन्द करवाना पड़ा था। असल में उसके डर का कारण ये भी था कि वह इलाके का कांग्रेसी छुटभैया नेता भी है। इसलिए इस बार भी वासुदेव मिश्रा मज़दूरों से किसी भी प्रकार से उलझना नहीं चाहता था और चाहता था कि कोई जमावड़ा उसकी फैक्ट्री के सामने न हो। उसी दिन हजारों मज़दूरों का जमावड़ा फैक्ट्री के गेट पर जाम लगा कर बैठ गया। जिससे वासुदेव मिश्रा व अन्य मालिकों पर दवाब बढ़ा क्योंकि इस जाम से इलाके की मुख्य सड़क ही बन्द हो गयी। दूसरा, इस घेराव से वासुदेव मिश्रा की छवि भी धूल में मिल रही थी। 21 जून की शाम को मज़दूरों ने आम सभा में 23 जून को इलाके के बीजेपी विधायक मोहन सिंह बिष्ट के घर का घेराव करने का फैसला लिया। दिल्ली में हाल ही में चुनाव होने वाले हैं और विधायक जी जो गली-गली में अपने नाम की होर्डिंग लगा रहे हैं, उनके घर के सामने इलाके के हजारों मज़दूर जमा हों और उनकी पोल पट्टी खोलकर रख दें, ऐसा वे कदापि नहीं चाहेंगे। ज्यादातर बादाम मालिक भी बीजेपी से जुड़े हुए हैं विधायक के घर के घेराव की बात सुनते ही मालिको ने फिर से वार्ता के लिए बुलाया। 22 जून को वासुदेव मिश्रा की फैक्टरी के घेराव से दवाब और भी बढ़ गया था, इस शाम मालिकों ने तीसरी दफा वार्ता की और 1.75 रुपये पर रेट तय किया। लेकिन यूनियन ने हड़ताल को जारी रखने का फैसला किया। प्रिण्ट मीडिया तथा इलैक्ट्रोनिक मीडिया में खबर आने से मालिकों और प्रशासन की परेशानी और बढ़ गयी थी।

23 जून को सुबह हजारों मज़दूर जिसमें इलाके के अन्य पेशों के मज़दूर भी बड़ी संख्या में मज़दूर संघर्ष रैली में शामिल हुए। हजारों मज़दूर 'हड़ताल चौक' से रैली की शुरूआत करके करावलनगर फैक्ट्री इलाके होते हुए दयालपुर में विधायक के घर पहुँचे। विधायक को दो दिन पहले ही सूचित किया गया था लेकिन विधायक ने अपने ही क्षेत्र के मज़दूरों से मिलने से मना कर दिया। कुछ मज़दूरों में विधायक को लेकर जो भ्रम था कि विधायक मज़दूर हितैषी है वह भी दूर हो गया और उसका मज़दूर विरोधी चेहरा तब और बेनकाब हो गया जब उसने वहाँ शान्तिपूर्वक सभा करने से मना करवा दिया और पुलिस बल की तैनाती घर के सामने करवा दी। लेकिन इस घटना के बाद मालिकों पर दवाब और बढ़ गया था। शाम को मज़दूर सभा में यह निर्णय लिया गया कि जो भी मालिक सफाई का रेट 2 रुपये देने व अन्य मांगों पर समझौता करने को तैयार होगा वहाँ काम शुरू करवाया जायेगा। यूनियन ने छोटे मालिकों को संदेश भेजा कि जो भी मालिक इस पर राजी होंगें वे

(पेज 6 पर जारी)

लुधियाना के टेक्सटाइल तथा होजरी मजदूरों ने 'मजदूर पंचायत' बुलाकर अपनी माँगों पर विचार-विमर्श कर मांगपत्रक तैयार किया

बीते 11 अगस्त को लुधियाना के टेक्सटाइल तथा होजरी मजदूरों ने "मजदूर पंचायत" की। यह पंचायत टेक्सटाइल होजरी कामगर यूनियन के आह्वान पर बुलाई गई। पंचायत का मकसद मजदूरों की समस्याओं और मांगों-मसलों पर विचार करते हुए इस साल तनखाह-पीस रेट बढ़ोतरी और कारखानों में श्रम कानून लागू करवाने हेतु मांगपत्र तैयार करना था।

पंचायत में लगभग एक हजार मजदूरों ने भाग लिया और मांगो-मसलों पर अलग-अलग कारखानों से आए मजदूरों ने अपनी बात रखी। आज के समय फैक्ट्रियों में मजदूरों के साथ हो रही धक्केशाही के खिलाफ मजदूरों ने तीखा रोष प्रकट किया और इस पर रोक लगाने के लिए संगठन की जरूरत की बात भी की। मगर इस के साथ ही उन्होंने ने पुरानी ट्रेड यूनियनों के द्वारा मज़दूरों से की गई गद्दारी के चलते कई शंकाएं भी जताईं। आज के समय में जानलेवा महंगाई के कारण बढ़ रही मुश्किलों के बारे में बात करते हुए कुछ प्रतिनिधियों ने कहा कि महंगाई के हिसाब से तनख़्वाह तथा पीस-रेट नहीं बढ़े हैं। इस के चलते मजदूरों को काम के घंटे और काम का बोझ बढ़ाना पड़ रहा है। मालिकों को महंगाई के हिसाब से बढ़ोतरी देने की बात कहने पर मालिक डराने-धमकाने तक पहुंच जाते हैं। यहाँ तक कि कई बार बिना पैसे दिए भी काम से निकाल देते हैं। इसलिए आज मजदूरों को सामूहिक रूप में अपनी मांगे मालिकों के आगे रखनी चाहिए। बहुत से मजदूरों ने पक्की भर्ती और तनख़्वाह पर काम होने तथा ठेकेदारी प्रथा की समाप्ति की माँग रखने पर भी जोर दिया।

इन मसलों पर बात रखते हुए यूनियन के नेताओं ने संगठन की जरूरत तथा यह बात कि सिर्फ संगठित शक्ति के द्वारा ही मज़दूरों की सुनवाई हो सकती है, पर बल दिया। इसका उदाहरण पिछले तीन सालों से जारी संघर्ष है। ऐसा यूनियन ने पीस-रेट बढ़ोतरी, कारखानों में ई.एस.आई. कार्ड बनवाने, वार्षिक बोनस लेना और कारखानों में मजदूरों के साथ होती बदसलूकी बंद करवा करके साबित कर दिखाया है। ठेका प्रथा की समाप्ति की मांग पर बात रखते हुए यूनियन के नेतायों ने कहा कि यह एक बड़ी माँग है जिस पर अनिवार्यत: संघर्ष किया जाना चाहिए। क्योंकि पीस-रेट बढ़ने पर मालिक धागे की क्वालिटी बदल कर दोबारा से मज़दूर की कुल तनख़्वाह को पहले के ही स्थान पर ला खड़ा करते हैं, इसलिए पक्की तनख़्वाह जो एक सम्मानज़नक जीवन जीने के जरूरी हो, लागू होने पर ही मालिक अपनी घटिया चालों से मज़दूरों को परेशान नहीं कर पायेंगे। मगर यह माँग एक बड़ी लामबंदी की माँग करती है। क्योंकि आज पूरे देश में ही जोर-शोर से ठेका प्रथा लागू की जा रही है, यहाँ तक कि सरकारी विभागों में भी ठेके पर भर्ती हो रही है, इसलिए मौजूदा समय में संगठित शक्ति को देखते हुए हमें वही माँगें आगे रखनी चाहिए जो सीमित एकता से हासिल की जा सकती हों, मगर विचार-विमर्श बड़ी माँगों पर भी होना चाहिए।

यूनियन के नेतायों ने मजदूर पंचायत के उद्देश्य के बारे में बात करते हुए कहा कि संगठन की जनवादी कार्यप्रणाली बहुत जरूरी है तथा संगठन में फैसले समूह की सहमति से लिये जाने चाहिए। इस से मज़दूरों को यह अहसास भी होता है कि यह माँगें-मसले उनके अपने हैं तथा उन्हें ही इस के लिए लड़ना होगा। अपने इस उदेश्य में यूनियन अब तक सफल रही है और यह लगातार तीसरा साल है जब माँगपत्र तैयार करने के लिए मजदूर पंचायत बुलाई जा रही है। पिछले दो सालों में यूनियन 72 दिनों की हड़ताल भी कामयाबी के साथ चला चुकी है और उसने मालिकों को झुका के ही दम लिया था। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इस साल भी मज़दूर पंचायत बुलाई गई है। बड़ी संख्या में मज़दूरों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए यूनियन ने 24,000 पर्चा लुधियाना के टेक्सटाइल तथा होजरी मजदूरों में नुक्कड़ सभाएं कर और कमरे-कमरे जाकर बाँटे और उनको मजदूर पंचायत में आने के लिया प्रेरित किया। इस पर्चे में यहाँ बॉक्स में दी जा रही मांगो को उभारा गया।

पंचायत में माँगों पर आम सहमति बनी। इन माँगों के आधार पर शीघ्र ही यूनियन एक मांगपत्र तैयार करेगी। इस माँगपत्र को सम्बंधित फैक्ट्री के मजदूर हस्ताक्षर कर अपने फैक्ट्री मालिक को देंगे। इसी मागपत्र की एक-एक प्रति शहर के श्रम विभाग के अधिकारियों और डीसी को भी सौंपी जाएगी। इन माँगों पर कोई कारवाई न होने की सूरत में सभी मजदूर फिर से इकट्ठा हो कर संघर्ष के रूप पर सहमति बना कर संघर्ष को आगे बढ़ाएँगे। ज़ोरदार नारों के साथ मजदूर पंचायत समाप्त हुई।

(1) इस वक्त लागू पीस रेटों और वेतन पर 30 प्रतिशत की वृद्धि की जाए। बढ़ी महँगाई को देखते हुए यह माँग पूरी तरह उचित है।

(2) 10 या 10 से ज्यादा मजदूरों वाले कारखानों में सभी मजदूरों के ई.एस.आई. कार्ड तत्काल बनाए जाएँ और जिन मजदूरों का कार्ड बन्द कर दिया गया है उसे तत्काल चालू किया जाए। कानून के मुताबिक ई.एस.आई. के लिए अंशदान के रूप में मजदूरों का हिस्सा 8 घण्टे की दिहाड़ी से बने वेतन का 1.75 प्रतिशत से अधिक न काटा जाए।

(3) सभी मजदूरों को कम से कम 8.33 प्रतिशत की दर से बोनस दिया जाए। पिछले बकाया बोनस का भुगतान तुरन्त किया जाए।

(4) 20 या 20 से ज्यादा मज़दूरों वाले कारखानों में सभी मजदूरों का ई.पी.एफ. चालू किया जाए। अंशदान के रूप में मजदूरों का हिस्सा 8 घण्टे काम के हिसाब से बने मासिक वेतन का 12 प्रतिशत से ज्यादा न काटा जाए और मालिक भी 12 प्रतिशत का अपना हिस्सा दे जो मजदूर के ई.पी.एफ. खाते में जमा करवाए, जिसकी रसीद सभी मज़दूरों को दी जाए।

(5) सालाना राष्ट्रीय, त्योहारों और कैजुअल छुटियाँ वेतन सहित दी जाएँ। पहली मई की अन्तरराष्ट्रीय छुटी लागू की जाए।

(6) सभी मजदूरों के फैक्ट्री पहचान-पत्र बनाए जाएँ।

(7) रात के समय चलने वाले कारखानों को बाहर से ताले लगाना बन्द किया जाए। क्योंकि रात को हादसा होने की सूरत में मजदूरों की कोई सुरक्षा नहीं होती जिसके चलते मजदूरों की जान भी चली जाती है।

(8) कारखानों में साफ पीने का पानी, साफ टायलेट-बाथरूम और आराम करने के लिए कमरे का प्रबन्ध किया जाए। औरत मजदूरों के लिए भी ऐसा ही प्रबन्ध अलग से किया जाए।

(9) वेतन व एडवांस 21 व 22 तारीख को दिया जाए। वेतन व एडवांस वाले दिन मजदूरों को दिन रहते छुट्टी की जाए ताकी रात के समय होने वाली छीना-झपटी से उनका बचाव हो सके।

(10) स्त्री मजदूरों को पुरुष मजदूरों के बराबर वेतनीपीस रेट दिया जाए। बच्चों को साथ लेकर आने वाली स्त्री मज़दूरों के बच्चों की देखभाल के लिए फैक्ट्रियों में शिशु-घर और प्रशिक्षित आया का प्रबन्ध किया जाए।

(11) शहर के बाहर इलाकों में स्थित कारखानों में मजदूरों को काम पर लेकर जाने और छोडने के लिए मालिक बसों आदि का प्रबन्ध करें।

(12) कारखानों में मजदूरों की सुरक्षा के पूर्ण प्रबन्ध किए जाएँ और हादसा होने की सूरत में उचित मुआवजा मिलने की गारण्टी की जाए।

(13) मजदूरों को संगठन बनाने का संवैधानिक अधिकार लागू किया जाए। अगुवाओं को काम से निकालने जैसी मजदूर विरोधी और गैर-कानूनी कारवाई पर रोक लगाई जाए।

(14) उपरोक्त माँगों सहित कारखानों में सभी श्रम कानून लागू किए जाएँ।

''किस्सा-ए-आज़ादी उर्फ 67 साला बर्बादी''

आज़ादी की 67वीं वर्षगांठ के अवसर पर करावल नगर में गुरूवार शाम को नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता व करावल नगर मज़दूर यूनियन के सयुंक्त बैनर तले एक सौंस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

उपरोक्त कार्यक्रम की थीम ''किस्सा-ए-आज़ादी ऊर्फ 67 साला बर्बादी'' थी। कार्यक्रम की शुरूआत करते हुए के.एम.यू. के नवीन कुमार ने बताया कि इस कार्यक्रम का मकसद आज़ादी के स्याह पहलुओं को उजागर करना है, उन्हानें बताया कि पिछले 67 वर्षों की आज़ादी की कुल जमा बैलेंस शीट यह है कि देश के समस्त संसाधनों पर मुट्ठीभर लोगों का कब्जा है तथा बहुसंख्यक नागरिक आबादी मूलभूत नागरिक सुविधाओं से भी महरूम है ऐसे में यह सवाल उठना लाज़िमी है कि ये किसकी आज़ादी है? कार्यक्रम की शुरूआत इप्टा के क्रान्तिकारी गीत ''तोड़ो बन्धन तोड़ो'' से हुई। इसके बाद मौजदू संसदीय व्यवस्था की वास्तविकता को उजागर करते हुए गुरुशरण सिंह का प्रसिद्ध नाटक ''हवाई गोले'' विहान सांस्कृतिक मंच द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसमें देश की संसदीय व्यवस्था व भ्रष्ट राजनेताओं के चरित्र को उजागर करते हुए यह दिखलाया गया कि मौजूदा संसद सिर्फ बहसबाजी का अड्डा बनकर रह गयी है। आगे कार्यक्रम में ''मेहनतकश औरत की कहानी'' नाटक का मंचन किया गया। जिसके फैज़ के गीत ''हम मेहनतकश जगवालों से'' की प्रस्तुति भी की गयी।

कार्यक्रम में बिगुल मज़दूर दस्ता के अजय ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि 15 अगस्त, 1947 को भारत आज़ाद तो हुआ लेकिन ये आज़ादी देश के चन्द अमीरज़ादों की तिजोरियों में कैद होकर रह गयी है। वास्तविक आज़ादी का अर्थ यह कत्तई नहीं है कि एक तरफ तो भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में अनाज सड़ जाता है वहीं दूसरी तरफ रोज़ाना 9000 बच्चे भूख व कुपोषण से दम तोड़ देते हैं। भगतसिंह के शब्दो में आज़ादी का अर्थ यह कत्तई नहीं था कि गोरे अंग्रेजों की जगह काले अंग्रेज आकर हम पर काबिज़ हो जायें। अजय ने आगे अपनी बात रखते हुए कहा कि देश की जनता पिछले 66 सालों के सफरनामे से समझ चुकी है कि ये आज़ादी भगतसिंह व उनके साथियों के सपनों की आज़ादी नहीं है जहाँ पर 84 करोड़ आबादी 20 रु. प्रतिदिन पर गुजारा करती हो तथा पिछले 15 वर्षों में ढ़ाई लाख से ज्यादा किसान आत्महत्या कर चुके हों, वहीं संसद-विधानसभाओं में बैठने वाले नेताओं मंत्रियों की ऊंचे वेतन के साथ सारे ऐशो-आराम कर रहे हैं।

सांस्कृतिक कार्यक्रम में आगे क्रान्तिकारी कवि गोरख पाण्डेय का भोजपुरी गीत ''गुलमिया अब नाहीं बजईबो'' को यूनियन के मज़दूर साथियों ने प्रस्तुत किया। कार्यक्रम का समापन करते हुए 'दिशा छात्र संगठन' के सनी सिंह ने बताया कि आज आज़ादी का जश्न वे लोग मनायें जिनको इस व्यवस्था ने सारी सुख सुविधाएं आम मेहनतकश जनता की कीमत पर मुहैया कराई हैं। देश की बहुसंख्यक छात्र युवा आबादी के लिए वास्तविक अर्थों में आज़ादी एक ऐसे समाज में ही सम्भव है जहाँ उत्पादन, राजकाज व समाज के पूरे ढांचे पर मेहनतकश वर्ग का कब्जा हो। एक ऐसा समाज जो शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के सपनों का समाज होगा जिसके लिए लोकस्वराज्य पंचायतों का गठन करते हुए फैसला लेने की ताकत जनता के हाथों में देनी होगी न की मुट्ठीभर धनपतियों के हाथों में, तभी सही मायनों में मुकम्मल आज़ादी आयेगी।

गर थाली आपकी खाली है, तो सोचना होगा कि खाना कैसे खाओगे

अभी पिछले दिनों हमें एक घटिया सी नौटंकी दिखायी गई जिसमें अभिनय निहायत भद्दा और प्रस्तुति बेहद उबाऊ थी। अवसर था कांग्रेसी नेताओं में गरीबी निर्धारण के सरकारी पैमाने को उचित साबित करने की होड़।

फिल्मी भड़ैती करनेवाले राजबब्बर (जिसे जिन्दा रहने के लिए आम मेहनतकश की तरह मशक्कत नहीं करनी पड़ती और न ही उनकी तंगहाल जिन्दगी की हकीकत से कोई वास्ता रहता है), वह लोगों को यह बता रहे थे कि 12 रुपये में बड़े आराम से पेट भरा जा सकता है। दूसरे कांग्रेसी नेता रसीद मसूद को यह भी ज्यादा लग रहा था। उनके हिसाब से तो 5 रुपये ही पेट भरने के लिए काफी थे। गले तक खाकर अघाये और बोतलबंद पानी गटकनेवाले इन नेताओं को तो यह भी नहीं पता कि देश की राजधानी दिल्ली में ही एक गरीब आदमी को अपने बीवी बच्चों की पानी की जरूरत पूरी करने की कीमत किस प्रकार अपनी जान गंवाकर देनी पड़ी। 2 किमी दूर से 20 किग्रा पानी अकेले ढोकर लाने में उसका जर्जर शरीर ढह गया। खाद्यान्न सुरक्षा तो दूर आम आदमी को तो पीने लायक पानी की सुरक्षा भी नहीं हासिल है।

दूसरी ओर सत्ता तक अपनी पहुंच बनाने की जी तोड़ कोशिशों में लगी भाजपा ने इस मौके को हाथों हाथ लपक लिया और उसके देश-प्रदेश स्तर के नेता ढ़ाबों और ठेलों पर थाली पकड़े 5 रु. में भर पेट भोजन मांगते हुए अखबारों और टी.वी. चैनलों के लिए फोटो सेशन देने लगे। यह समूचा दृश्य उबकाई पैदा करनेवाला था।

ऐसे खेल तमाशे हर पाँचसाला चुनाव के पहले दिखाये जाते हैं। विशेषकर गरीब और गरीबी दूर करने से संबंधित नौटंकी चुनाव के ऐन पहले प्रदर्शन के लिए हमेशा सुरक्षित रखी जाती है। दरअसल इसके जरिये सत्तासीन पार्टी और सत्तासुख से वंचित तथाकथित विरोधी पार्टियां (जो कि वास्तव में चोर-चोर मौसेरे भाई की तरह ही होती हैं - जनता की हितैषी होने का दिखावा, लेकिन हकीकत में पूँजीपतियों की वफादार), दोनों ही आम जनता को भरमाने का मुगालता पाले रहती हैं। पर जनता सब जानती है। वह अपने अनुभव से देख रही है कि आजादी के 62 सालों में देश की तरक्की के चाहे जितने भी वायदे किये गये हों, उसकी जिन्दगी में तंगहाली बढ़ी ही है। पेट भरने लायक जरूरी चीजों की भी कीमतें आसमान छू रही हैं, उसके आंखों के सामने उसके बच्चे कुपोषण और भूख से मर रहे हैं, और दवा और इलाज के अभाव में तिल-तिल कर खत्म हो जाना जिसकी नियति है। इस सच्चाई को गरीब और गरीबी के बेतुके सरकारी आंकड़े झुठला नहीं सकते।

देश की सूरत बदलने का सब्ज़बाग दिखाकर कांग्रेस ने आर्थिक उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को बड़े गाजेबाजे के साथ बाइस साल पहले लागू किया था। इसमें अग्रणी भूमिका निभानेवाले, पूँजीपतियों के चहेते मनमोहनसिंह तब कांग्रेस का वित्त मंत्रालय सम्भालते थे। और अब प्रधानमंत्री की गद्दी पर बैठकर उन आर्थिक सुधारों की रफ़्तार बढ़ाने में एक बार फिर अपनी सारी काबलियत लगा दी है। इससे पूरे देश की सूरत तो नहीं बदली पूँजीपतियों के चेहरे समृद्धि की चिकनाहट से जरूर चमकने लगे। उनकी दौलत दिन दूनी रात चौगुनी के दर से बढ़ती रही। पिछले 20 वर्षों में मुकेश अंबानी की दौलत में जहां 101 गुना इजाफा हुआ, वहीं महिन्द्रा की दौलत 270 गुना बढ़ गई, इंफोसिस की 5100 गुना, तो कुख्यात वेदान्ता के अनिल अग्रवाल की दौलत 1024 से भी ज्यादा बढ़ गई। इनके और इनके लग्गुओं भग्गुओं के विकास को देश का विकास कहा गया। परन्तु विकास की सीढ़ियां चढ़ते देश में लोगों की दोनों वक्त की रोटी की सबसे बुनियादी जरूरत भी अब तक पूरी नहीं हो सकी है। वैसे भी यदि कांग्रेस को खाद्यान्न सुरक्षा विधेयक की जरूरत को (वह सियासी दांव पेंच ही क्यों न हो) मुद्दा बनाना पड़ रहा हो तो यह समझा जा सकता है कि आर्थिक सुधार की जिन नीतियों के जरिये आम जनता की खुशहाली के दावे लगातार किये जा रहे थे वह आज कितना खोखला साबित हुआ है। आर्थिक सुधारों का असली फायदा किसे पहुंच रहा है इसके लिए अमर्त्यसेन की तरह बहुत बड़े अर्थशास्त्री होने की भी जरूरत नहीं।

यह बात भी अब जनता से छुपी नहीं है कि मौजूदा वित्तमंत्री चिदंबरम साहब भी फिक्की और ऐसोचैम (पूँजीपतियों के संगठन)की बैठकों में आर्थिक सुधारों की रफ़्तार बढ़ाने के बारे में पूँजीपतियों को आश्वस्त करना क्यों जरूरी समझते हैं। इतना ही नहीं किसी जन या वोट दबाव में पूँजीपतियों के हितों के विपरीत यदि सरकार कोई निर्णय कभी लेती भी है तो उसे इनकी कड़ी फटकार सुननी पड़ती है यहां तक कि फैसलों को वापस तक लेना पड़ता है। जैसाकि अभी कुछ दिना पहले पूँजीपतियों पर लगाये जाने वाले अतिरिक्त कर के मामले में हुआ था। साफ है कि पूँजी और मुनाफे की इस पूरी व्यवस्था को सम्भालने का का काम सरकारें बिल्कुल मुनीम की कुशलता और चतुराई से करती हैं। उनके मुनाफे पर वे कोई आंच नहीं आने देतीं। यदि कभी ऐसा होती भी है तो तमाम तरह के करों में भारी भरकम छूट देकर वे फौरन उसकी भरपाई करने में जुट जाती हैं। अभी पिछले ही वर्ष सरकार की ओर से उन्हें दी गई छूट की यह रकम पाँच लाख करोड़ रुपये थी। जाहिर है इस भरपाई का बोझ हमेशा मेहनतकश जनता ही उठाती है।

पूँजीपतियों के लिए ये सारी छूटें और सहूलियतें! और देश की बहुसंख्यक आबादी जो अपनी मेहनत की कमाई पर जीती है उसे सरकार से मुट्ठी भर अनाज पाने के लिए वाहियात ढंग से बनाई गई गरीबी रेखा के नीचे गुजर बसर करने की शर्त पूरी करनी होगी! यानी यदि वह गांव में हो तो 27.2 रु. और शहर में हो तो 33.3 रु. रोजाना की आय पर ही जी सकता हो। हर प्रकार के जोड़तोड करके यह आंकड़ें तैयार करनेवाले योजना आयोग को इस बात से कोई मतलब नहीं कि इस रकम से उसे रोजाना काम करने के लिए जरूरी 2100-2200 कैलोरी की ऊर्जा प्रतिदिन मिलेगी या नहीं। जो खुद अपने यहां नाश्ते पर 84 लाख रुपये उड़ा डालता हो और शौचालय पर यूं ही 35 लाख फूंक देता हो उससे जनता की बेहतरी की योजना तैयार करने की हम उम्मीद भी नहीं कर सकते। उसके बाद भी योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेकसिंह अहलूवालिया यहीं नहीं रुके, उन्होंने आंकड़ों की शातिराना बाजीगरी से यह साबित करने की कोशिश की - गरीबों की संख्या 2.2 फीसदी दर से लगातार घट रही है और यह कि अब देश में सिर्फ 21.9 प्रतिशत यानी 27 करोड़ लोग ही गरीब हैं। अगर इसे सच मान लिया जाये तो इस लिहाज से वह दिन दूर नहीं जब गरीबी रेखा की जरूरत ही नहीं रहेगी। तब, जाहिर है, शासन व्यवस्था के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी कुछ बची-खुची असुविधाजनक कल्याणकारी योजनाओं और जनता को थोड़ी बहुत दी जानेवाली छूटों-रियायतों से छुटकारा पा लेने की राह आसान हो जायेगी। शतप्रतिशत सभी कुछ देशी-विदेशी पूंजी के हवाले। है न, खुला खेल फरूखाबादी? परन्तु हिसाब किताब बिठाने में मुब्तिला अहलूवालिया साहब यह एक बात तो भूल ही गये कि योजना आयोग के ही एक सदस्य अर्जुन सेन गुप्ता ने, अभी बहुत दिन नहीं हुए, अपनी रिपोर्ट में बताया था कि 20 रु. या उससे भी कम रोजाना (27 या 33 रु. रोजाना नहीं) आय पर जीनेवालों की संख्या ही आज देश में 77 फीसदी या 84 करोड़ से भी ज्यादा है। यदि 27-33 रु. आमदनी वाली आबादी को भी इसमें शामिल कर लिया जाये तो बिल्कुल साफ है कि यह संख्या और ज्यादा बढ़ जायेगी। भारतीय राज्य भूख सूचकांक के अनुसार भी 17 राज्यों में किये गये सर्वेक्षण में 12 राज्यों में भूख की स्थिति भयावह है।

ये आप पर है कि पलट दो सरकार को उलटा

कुल मिलाकर यह सारा तमाशा आर्थिक सुधारों की जरूरत और उसके फायदे प्रमाणित करने की बदहवासी है। ऐसा नहीं है कि भाजपा का इससे कोई मतभेद है। राजनाथ सिंह और उनके चेले-चाटी अपने यहां इसके विरोध में चाहे जितनी गर्म-गर्म बातें करते रहे हों, अभी हाल ही में अमेरिकियों और अमेरिकी भारतीयों की बैठकों में जाकर वे इन आर्थिक सुधारों की पुरज़ोर वकालत कर आये हैं। उस दौरान नरेन्द्र मोदी के लिए वीजा की भीख मांगने के सिलसिले में वे अमेरिका गये हुए थे। लिहाजा यह बिल्कुल शीशे की तरह साफ है सरकार चाहें कोई भी चुनावबाज पार्टी बनाये वास्तव में वे पूँजीपतियों की बेलगाम लूट और मुनाफे की परिस्थितियां ही तैयार करेंगी, उनके हित में राजकाज, पैदावार और बंटवारे की पूरे तंत्र को ही संचालित करेंगी। आम मेहनतकश जनता उनकी निगाह में इंसान नहीं पशु होगी जिसे वस्त्र, मकान इलाज और शिक्षा की जरूरत नहीं। बस पेट में डालने भर को जिसके लिए मुट्ठी भर अनाज काफी होगा और वह भी गरीबी रेखावाली शर्त पूरी करने के बाद।

मेहनतकश अवाम के लिए इस नारकीय स्थिति से निजात पाने का रास्ता बस एक ही है। क्रांतिकारी विकल्प की तैयारियों को तेज कर देना। अब और इसमें देर करना घातक होगा।

ग़र थाली आप की ख़ाली है

ग़र थाली आपकी ख़ाली है
तो सोचना होगा कि खाना कैसे खाओगे

ये आप पर है कि पलट दो सरकार को उलटा
जब तक कि ख़ाली पेट नहीं भरता

अपनी मदद
आप करो
किसी का इन्तज़ार ना करो
यदि काम नहीं है और आप हो ग़रीब
तो खाना कैसे होगा ये आप पर है
सरकार आपकी हो ये आप पर है
पलट दो उलटा सर नीचे और टाँगें ऊपर
आप पर है कि पलट दो सरकार को उलटा
तुम पर हँसते हैं कहते हैं तुम ग़रीब हो
वक़्त मत गँवाओ अपनेआप को बढ़ाओ
योजना को अमली जामा पहनाने के लिए
ग़रीब-गुरबा को अपने पास लाओ
ध्यान रहे कि काम होता रहे
होता रहे-होता रहे
जल्दी ही समय आयेगा जब वो बोलेंगे
कमज़ोर के आस-पास हँसी मँडरायेगी,
हँसी मँडरायेगी, हँसी मँडरायेगी

– बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ('मदर' नाटक से)

असली मुद्दा ख़नन की वैधता या अवैधता का नही बल्कि पूँजी द्वारा श्रम और प्रकृति की बेतहाशा लूट का है।

उत्तर प्रदेश के नोएडा (गौतमबुद्धनगर) में हिण्डन और यमुना नदी में चल रहे अवैध खनन का मुद्दा सुर्ख़ियों में है। इसके पूर्व कर्नाटक, केरल, गोवा, आन्ध्रा, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और राजस्थान यानी लगभग पूरे देश में चल रही खानों-खदानों की लूट (जिसमें लोहा, कोयला, बॉक्साइट, अभ्रक, कीमती पत्थर, नाभिकीय खनिज आदि शामिल हैं) की ख़बरें पूँजीवादी मीडिया में सुर्ख़ियाँ बटोरती रही हैं। मीडिया और सरकार इसका ठीकरा भ्रष्टाचार के सिर फोड़ते रहे हैं। इसमें थोड़ी-बहुत सच्चाई भी है। लेकिन आधा सच झूठ के बराबर है। यह झूठ सोच-समझकर फैलाया जाता है ताकि असली मुज़रिम को बचाया जा सके। देश की मेहनतकश मज़दूर आबादी और निम्न मध्यवर्ग के लिए यह मुद्दा भारी महत्व का है। ख़नन चाहे वैध हो या अवैध, इसके साथ लाखों मज़दूरों के मेहनत की लूट का सवाल तो जुड़ा ही है, साथ ही साथ प्रकृति के विनाश का मसला भी जुड़ा हुआ है।

अर्थव्यवस्था के खनन सेक्टर में काम करने वाले मज़दूरों के हालात बेहद ही ख़राब हैं। अकेले राजस्थान के खनन उद्योग में बीस लाख से भी ज़्यादा मज़दूर काम कर रहे हैं। इनमें से तीन लाख पचहत्तर हज़ार (3,75000) बच्चे हैं। कर्नाटक में दो लाख बच्चों से खानों में काम करवाया जाता है। अवैध खनन भी भारी पैमाने पर चल रहा है। वर्ष 2010 में देश में लगभग 82,330 (बयासी हज़ार तीन सौ तीस) अवैध खनन के मामले सामने आये थे। महाराष्ट्र में 25 प्रतिशत और राजस्थान में 50 प्रतिशत पत्थर ख़दानें अवैध हैं। ख़दानों में काम करने वाले मज़दूर जिनमें पुरुष, महिलायें और बच्चे सभी शामिल हैं, ख़दानों के प्रदूषण की चपेट में आकर घातक बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। काम के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं में लाखों की संख्या में मज़दूर मारे जाते हैं या अपंग हो जाते हैं। सरकारें और ख़दान मालिकान इनका रिकॉर्ड तक नहीं रखते। शारीरिक शक्ति से अधिक काम कराये जाने और बीमारियों के कारण मज़दूरों की कम उम्र में ही मौत हो जाती है। बच्चे अनपढ़ और कुपोषित रहते हैं। ख़दान मज़दूरों की औसत मज़दूरी 40 से 150 रुपये तक है।

पूँजीवादी अदालतें और मीडिया अवैध खनन को वैध तरीके से चलाने की पुरज़ोर वकालत करते हैं। लेकिन मज़दूरों, मेहनतकशों के सामने तो असली सवाल यह है कि जहाँ यह ख़नन वैध तरीके से चल रहा है क्या वहाँ श्रम की लूट और प्रकृति का विनाश रुक गया है? अगर नहीं तो क्या वजह है कि सरकार, अदालतें और मीडिया मज़दूरों के श्रम की लूट के मुद्दे को एकदम गोल कर जाते हैं? उनका कुल ज़ोर ख़दानों को कानूनी बनाने पर ही क्यों रहता है। इस सवाल का जवाब ढूँढने के लिए हम रेत-खनन का ठोस उदाहरण लेते हैं।

आप जानते हैं रेत-खनन उद्योग दूसरे कई उद्योगों से जुड़ा हुआ है। हमारे देश में अवरचना निर्माण उद्योग (यानी सड़कें, पुल, बाँध आदि का निर्माण) और भवन निर्माण उद्योग में हर साल लाखों टन रेत की ख़पत होती है। अर्थव्यवस्था के इन दो महत्वपूर्ण सेक्टरों का कुल सालाना कारोबार करीब चार लाख करोड़ रुपये है। इसके अलावा काँच उद्योग और इलेक्ट्रॉनिक समानों में लगने वाली सिलीकॉन चिप के उत्पादन के लिए भी एक विशेष क़िस्म की रेत (जिसे सिलिका कहते हैं) का कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होता है। अकेले काँच उद्योग का सालाना कारोबार 1350 करोड़ रुपये है। यह शुद्ध रूप से वैध कारोबार के आँकड़े हैं। इसमें अवैध तरीके से होने वाला व्यापार शामिल नहीं है। लेकिन तस्वीर के इतने हिस्से से एक बात साफ़ हो जाती है कि पूँजीपति वर्ग तथाकथित वैध तरीके से भी मज़दूरों के श्रम और प्रकृति के संसाधनों को लूटकर अपने लिए निजी सम्पत्ति पैदा कर रहा है। कानून, सरकार और संविधान सिर्फ़ इतना करते हैं कि इस लूट पर टैक्स लगाकर इसे कानूनी बना देते हैं। जब पूँजीपति वर्ग का एक हिस्सा अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए टैक्स चोरी कर सरकार को धोखा देने लगता है तब इसमें आश्चर्य कैसा! जब एक बार कोई समाज-व्यवस्था श्रम की लूट को कानूनी मान्यता देती है तो उसमें भ्रष्टाचार का कीड़ा तो पैदा होगा ही। चूँकि तमाम संस्थायें जैसे सरकार, मीडिया, अदालतें आदि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की हिफ़ाज़त ही करती हैं इसीलिए वे इस असली सवाल पर हमेशा चुप्पी लगाये रहती हैं और सारा दोष भ्रष्टाचार के माथे मढ़कर पूँजीवादी शोषण पर पर्दा डालने का काम करती हैं।

प्रकृति के विनाश का मसला भी बहुत महत्वपूर्ण है। अगर हम केवल रेत-ख़नन से होने वाले नुकसान को ही देखें तो एक अनुमान के मुताबिक नदियों में रेत की आवक के मुक़ाबले उसका उठान (ख़नन) चालीस गुना तेजी से हो रहा है। इसके कारण नदियों का रास्ता बदल रहा है। पानी के बहाव की रफ़्तार तेज़ हो रही है। इससे नदी किनारों और पुश्तों के कटान की समस्या पैदा हुई है। इसने बाढ़ की समस्या को विकराल बना दिया है। रेत प्राकृतिक तौर पर पानी का भण्डारण भी करती है और बहुत से जीव-जन्तुओं को आवास भी है। अँधाधुँध खुदाई से मछलियों की बहुत सी प्रजातियाँ या तो ख़त्म हो गयी हैं या उनकी संख्या बहुत थोड़ी ही रह गयी है। इसने मछुआरों को बड़े पैमाने पर काम से उजाड़ा है और उन्हें बेरोज़गारों की फ़ौज में खड़ा कर दिया है। इसका एक और दुष्परिणाम यह है कि भूगर्भ के पानी के भण्डार भी लगातार छीजते जा रहे हैं। साफ़ पीने का पानी मिलना लगातार मुश्किल होता जा रहा है। पूँजीपतियों ने अपने द्वारा पैदा की गई इस समस्या से भी मुनाफ़ा कमाने की जुगत ढूँढ ली है। नोएडा की मज़दूर बस्तियों तक में पीने का बोतलबन्द पानी बिकने लगा है।

मज़दूरों-मेहनतकशों के श्रम की लूट और प्रकृति का विनाश पूँजीवादी उत्पादन के अनिवार्य परिणाम हैं। इन समस्याओं को कानूनी बदलावों से हल नहीं किया जा सकता। यह तो तभी सम्भव है जब निजी सम्पत्ति के नींव पर खड़ी पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था की जगह मज़दूर वर्ग आपसी सहकार, भाईचारे और संसाधनों के सामूहिक स्वामित्व के आधार पर एक नई व्यवस्था का निर्माण करे।

करावल नगर मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में दिल्ली के बादाम मज़दूरों की शानदार जीत

(पेज 3 से आगे)

एकजुट हों और समय व स्थान बताएँ जहाँ वार्ता की जा सके। जब इलाके के बड़े मालिकों को यह बात पता चली तो उन्होंने गुट बनाकर कुछ छोटे मालिकों की पिटाई कर दी। अब तक मालिकों की कुत्ताघसीटी जो बंद कमरों में हो रही थी वह खुले आम सड़कों पर होने लगी। दोपहर को बड़े मालिकों के गुट ने शाम के समय वार्ता का प्रस्ताव रखा। 24 जून की रात 8 बजे यूनियन और मालिकों के बीच 6 मांगों पर समझौता हुआ। जिन मांगों पर समझौता हुआ वे इस प्रकार हैं :-

1. बादाम सफाई का रेट 2 रुपये प्रतिकिलो होगा।

2. प्रत्येक साल जून में वेतन में दस प्रतिशत की वृद्धि की जायेगी।

3. प्रत्येक बादाम की फैक्ट्री पर साफ पीने के पानी व शौचालय की व्यवस्था होगी।

4. वेतन का भुगतान प्रत्येक महीने के पहले सप्ताह तक कर दिया जायेगा।

5. मालिक-मज़दूर के बीच के विवाद का निपटारा यूनियन की उपस्थिति में किया जायेगा।

6. प्रत्येक मज़दूर को उपस्थिति कार्ड दिया जायेगा।

रात साढ़े 9 बजे इलाके में विजय जुलूस निकालकर हड़ताल करने की घोषणा की गयी।

हड़ताल के निष्कर्ष:-

सकारात्मक पहलू : 2008 की हड़ताल दिल्ली के असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की बड़ी हड़तालों में से एक थी, लेकिन 2013 की हड़ताल ज्यादा सुसंगठित और इसमें मज़दूरों की एकता ज्यादा ताकतवर थी, क्योंकि अन्य पेशों के मज़दूरों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन था। दूसरी बात पिछली हड़ताल की गलतियों से मज़दूरों ने सीख लिया था कि मज़दूरों की व्यापक एकता और सही नेतृत्व ही उन्हें जीत दिला सकता है। केएमयू की पकड़ मज़दूरों में व्यापक और गहरी हुई थी इसकी वजहें थीं, मज़दूरों के बीच सतत राजनीतिक प्रचार करना, मालिक द्वारा पैसा रोके जाने या पुलिस या दबंगों द्वारा प्रताड़ित किये जाने पर मज़दूरों को संगठित करके संघर्ष करना। इसके अलावा इलाके में सुधार कार्य करना। इन सब कामों से केएमयू पर मज़दूरों का विश्वास बढ़ा था। इलाके में मौजूद दलाल ट्रेड यूनियन एक्टू का पूरी तरह से सफाया हो जाने का जिसके लोग मज़दूरों में भ्रम फैलाने और दलाली में लगे रहते थे, केएमयू को फायदा हुआ। अन्य पेशे के मज़दूरों जिनमें मुख्य रूप से भवन निर्माण मज़दूर, पेपर प्लेट मज़दूर, वॉकर फैक्ट्री मज़दूर आदि के खुलकर बादाम मज़दूरों के संघर्ष में साथ आने से मज़दूरों की इलाकाई एकता मजबूत हुई है। इलाके के अन्य पेशे के मज़दूरों का मौन समर्थन संघर्ष को मज़बूती दिये हुए था। इन सब वजहों से इलाके के चुनावी नेता, ''रसूखदार'' लोग और आरएसएस के तत्व जो पिछली हड़ताल में खुलकर मालिकों का साथ दे रहे थे इस बार मालिकों की मदद खुलकर नहीं कर पाए। मज़दूरों के बीच जातिगत भेदभाव या भाषागत भेदभाव भी कम हुए हैं। बादाम मज़दूरों की बड़ी आबादी बिहार के नालन्दा जिले से है। जो मज़दूर मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर जिले से हैं जिन्हें मालिक अपना रिश्तेदार या अपने गाँव का कहत हैं, ने इस बार की हड़ताल में मालिकों का साथ नहीं दिया। क्योंकि ये मज़दूर 3-4 साल में समझ गये हैं कि मालिक कहीं का हो वो एक है उसी प्रकार मज़दूरों को भी एक होकर ही कुछ हासिल हो सकता है। जातिगत तौर पर मज़दूरों का बड़ा हिस्सा पिछड़ी जाति से है और एक हिस्सा दलित जाति से और छोटा सा हिस्सा स्वर्ण जाति से भी है। जातिगत भेदभाव न तो पिछली हड़ताल के दौरान था और न ही इस हड़ताल के दौरान। लेकिन धार्मिक व सामाजिक रीति-रिवाज में जातिगत भेदभाव देखने को मिलता है पर अब यह भी तेजी से धूमिल हो रहा है। यूनियन का विस्तार इलाके की अल्पसंख्यक आबादी में होने से मुस्लिम आबादी का एक हिस्सा जो मज़दूर है खुलकर मज़दूरों के संघर्ष में साथ आया। यूनियन में सामूहिक फैसला लेने और प्रत्येक दिन के कार्यक्रम का समय तय करने और आगे की योजना पर सभी साथियों से सलाह लेने का काम अच्छी तरह से किया गया। महिलाओं की पहलकदमी खोलने से और मज़दूरों की शक्ति का योजनाबद्ध तरीके से उपयोग करने से हड़ताल को संगठित और मजबूत बनाया जा सका।

नकारात्मक पहलू : हड़ताल की सफलता के बावजूद बादाम उद्योग में लगे उत्तराखण्ड और यूपी के मज़दूर जो बादाम मज़दूरों की कुल संख्या का छोटा सा ही हिस्सा है, हड़ताल के दौरान खुलकर साथ नहीं आया। यूपी के मज़दूरों का एक हिस्सा साथ था जोकि पिछली हड़ताल से ज्यादा था लेकिन इन मज़दूरों का बड़ा हिस्सा चुपचाप घर बैठा था या एक हिस्सा काम भी कर रहा था। केएमयू की पकड़ अभी भी इन मज़दूरों में कम है और इनके बीच सघन प्रचार नहीं किया गया है। आन्दोलन के दौरान कुछ जगह पर जहाँ सामूहिक रूप से बातचीत होने पर फैसला लिया जाना चाहिए था वहाँ नेतृत्व ने अपने मन मुताबिक भी फैसला लिया जो कि सामूहिकता का निषेध और व्यक्तिवाद को दर्शाता है। मज़दूरों के बीच पैदा हो रहे आक्रोश और संघर्ष के लिए तैयार होती परिस्थितियों का सही आकलन भी यूनियन की कोर टीम को नहीं था। इस वजह से बादाम मज़दूरों की कुछ अन्य माँगों को ठीक से नहीं उठाया जा सका जिसमें बादाम मज़दूरों में स्टॉफ का काम करने वाले मज़दूरों की मांग थी। दिल्ली के असंगठित मज़दूर क्षेत्र में बादाम मज़दूरों की 6 दिन चली हड़ताल में हुई जीत यह दिखलाती है कि मज़दूरों की इलाकाई एकता और जुझारू नेतृत्व के जरिये ही मज़दूर संघर्षों को जीता जा सकता है।

दिल्ली की शाहाबाद डेयरी बस्ती में एक और बच्ची की निर्मम हत्या

बच्चोंऔरस्त्रियोंकोबचानेकेलिएचौकसीदस्तेबनाओ

तमाम विरोध-प्रदर्शनों, पुलिस की तथाकथित चौकसी और मीडिया में लगातार खबरें आने के बावजूद देशभर में बच्चियों और स्त्रियों के प्रति वहशियाना घटनाओं में कमी नहीं आ रही है। बल्कि, ऐसा प्रतीत होता है कि बीमार मानसिकता से ग्रस्त इन वहशियों की हिम्मत दिन-ब-दिन और बढ़ती जा रही है। ऐसी ही एक जघन्य घटना बीती जुलाई में बाहरी दिल्ली के शाहाबाद डेयरी इलाके में हुई जहां एक छह वर्षीय बच्ची की छाती पर किसी भारी चीज से लगातार वार करके उसकी निर्मम हत्या कर दी गयी। मां-बाप एफआईआर दर्ज कराने के लिए थाने के चक्कर काटते रहे, लेकिन तब तक प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई जब तक कि स्थानीय लोगों और सामाजिक संगठनों ने थाने पर हंगामा नहीं किया। जांच भी लंबे समय तक टाली जाती रही, और बाद जांच का दबाव बढ़ने पर एक आरोपी लड़के को पकड़ा भी तो उसके परिवार वालों और इलाके के दबंग लोगों के दबाव में उसे छोड़ दिया गया।

बीती 13 जुलाई को शाहाबाद डेयरी के मो. रहीस की बच्ची पास के एक खाली मकान के बाथरूम में खून से लथपथ हालत में मिली। उसे अस्पताल भर्ती कराया गया जहां अगले दिन उसने दम तोड़ दिया। पांच दिन तक तो पुलिस ने मामले में प्राथमिकी दर्ज ही नहीं, और परिवार वालों और सामाजिक संगठनों ने थाने पर हंगामा किया तो प्राथमिकी दर्ज की गयी। 30 जुलाई को एक आरोपी लड़के को पकड़ा गया, लेकिन लड़के के परिवार वालों और इलाके के दबंगो के दबाव में उसे छोड़ दिया गया। बाद उस लड़के के रिश्तेदारों ने रहीस और उनकी पत्नी को डरा-धमकाकर एक सादे कागज पर दस्तखत करा लिए और अंगूठे की छाप ले ली। रहीस का कहना है कि वे उन पर समझौता करने और लड़के को बेगुनाह बताने का बयान देने के लिए दबाव डाल रहे थे। अब जांच उसी कछुआ रफ्तार से चल रही है और बच्ची के मां-बाप ने आशंका जतायी है कि धीरे-धीरे इस पूरे मामले को ठंडे बस्ते में डाल दिया जाएगा।

लेकिन सोचने वाली बात यह है कि ऐसे अपराध समाज में हो ही क्यों रहे हैं। इस समाज में स्त्रियां और बच्चियां महफूज क्यों नहीं हैं। दरअसल, 1990 के बाद से देश में उदारीकरण की जो हवा बह रही है, उसमें बीमार होती मनुष्यता की बदबू भी समायी हुई है। पूंजीवादी लोभ-लालच की संस्कृति ने स्त्रियों को एक 'माल' बना डाला है और इस व्यवस्था की कचरा संस्कृति से पैदा होने वाले जानवरों में इस 'माल' के उपभोग की हवस भर दी है। सदियों से हमारे समाज के पोर-पोर में समायी पितृसत्तात्मक मानसिकता इसे हवा दे रही है, जो औरतों को उपभोग का सामान और बच्चा पैदा करने की मशीन मानती है, और पल-पल औरत विरोधी सोच को जन्म देती है। और '90 के बाद लागू हुई आर्थिक नीतियों ने देश में अमीरी-गरीबी के बीच की खाई को अधिक चौड़ा किया है, जिससे पैसे वालों पर पैसे का नशा और गरीबों में हताशा-निराशा, अपराध हावी हो रहा है।

यूं तो स्त्री विरोधी अपराधों में धनपशु बड़ी संख्या में लिप्त होते हैं, लेकिन उनकी अय्याशियां और अपराध पांच सितारा होटलों के झीनों परदों के पीछे छिपे रहते हैं, या पैसे के बूत वे अपने कुकर्मों को दबा देते हैं। गुड़गांव में चलती कार में युवती के साथ बलात्कार की हालिया घटना या अन्य ऐसे कुकृत्यों के बहुत कम मामले प्रकाश में आते हैं। ज्यादातर में तो वे अपने रसूख से मामलों को दबा देते हैं और पुलिस भी उन्हीं का पक्ष लेती है। और यह कोई नई बात नहीं है।

लेकिन हमें भूलना नहीं होगा कि इस पूँजीवादी व्यवस्था में मायूसी तंगहाली में दिन काट रही गरीबों-मेहनतकशों की आबादी का एक छोटा सा हिस्सा भी लम्पटीकरण की चपेट में आ रहा है। मौजूदा हालात ऐसे हैं कि गरीबों के कुछ बेटे इसे बदलने के बारे में, विद्रोह के बारे में सोच रहे हैं, नया रास्ता तलाश रहे हैं, तो कुछ तत्व मायूसी और अवसाद के चलते नशे की शरण में जा रहे हैं। इन्हीं में एक छोटा हिस्सा ऐसा भी है जो इससे भी आगे बढ़कर, अपराधी और लम्पट बन रहा है। ऐसे ही अपराधी-लम्पट हाल में बच्चियों और स्त्रियों के खिलाफ बर्बर अपराधों में शामिल रहे हैं। और ये तत्व मजदूर बस्तियों तक में पाए जाते हैं। बस्तियों में शराब के वैध-अवैध अड्डे, मोबाइल रीचार्जिंग की दुकानों पर अश्लील क्लिपिंग डाउनलोड करने के अड्डे इन तत्वों में मानवद्रोही-वहशी संस्कृति को खाद-पानी देने का काम करते हैं। जहां तक पुलिस का सवाल है, तो पांच-छह साल की बच्चियों तक से ये गैर-इंसानी वारदातें पुलिस की नाक के नीचे होती हैं। एक जगह तो बलात्कार की रिपोर्ट दर्ज कराने गयी लड़की से पुलिस ने दोबारा बलात्कार किया। गांधीनगर में बच्ची के साथ वहशी हरकत की रिपोर्ट लिखाने गए मां-बाप को पुलिस ने दो हजार रुपए देकर मुंह बन्द रखने की सलाह दी।

ऐसे में, हमें शाहाबाद डेयरी में छह वर्षीय मुस्कान की हत्या को भी इसी नजरिए से देखना होगा। मामला सिर्फ इस या उस घटना का नहीं है। सवाल तो उस समाज को बदलने का है जहां ये घटनाएं हो रही हैं। और इसके लिए अब आम जनता को ही आगे आना होगा। नेताओं-नौकरशाहों और पुलिस के भरोसे अब और नहीं बैठा जा सकता। जनता को अपने खुद के चौकसी दस्ते बनाने होंगे। ऐसे अपराधियों और उनके अड्डों को ध्वस्त करना होगा और इन्हें बढ़ावा देने वाले नशे के अड्डों और मोबाइल में अश्लील वीडियो डाउनलोड करने की दुकानों को भी नेस्तानाबूद करना होगा। लड़ाई लंबी है, लेकिन शुरुआत तो करनी ही होगी।

- मज़दूर बिगुल संवाददाता

इलाहाबाद में फासिस्टों की गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ छात्र सड़क पर

फासिस्ट ताकतें अपने खिलाफ एक शब्द भी नहीं सुनना चाहती। और भारत में इनके हौसले लगातार बढ़ ही रहे हैं। पिछले दिनों, अंधविश्वास और जादू-टोने के खिलाफ लड़ने वाले सामाजिक कार्यकर्ता नरेंद्र डाभोलकर की हत्या कर दी गयी, फिर पुणे में उनकी श्रद्धांजलि सभा पर एबीवीपी और बजरंग दल के गुंडों ने हमला करके आयोजक छात्रों को घायल कर दिया। इसी तरह, इलाहाबाद में लगायी जाने वाली दो प्रगतिशील दीवार पत्रिकाओं 'प्रतिरोध' और 'संवेग' को फाड़ने और उन्हें लगाने वाले छात्रों से फोन पर गाली गलौज करने और गुजरात के मुसलमानों की तरह काटकर फेंक देने की धमकी देने का मामला सामने आया है।

पिछले माह जुलाई से शहीद भगत सिंह विचार मंच तथा स्त्री मुक्ति लीग के कार्यकर्ताओं को 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद' व 'बजरंग दल' के तथाकथित कार्यकर्ताओं द्वारा धमकी दी जा रही थी। जुलाई माह में मेडिकल कालेज के एक छात्रा ने फोन किया और गालीगलौज की। उस समय ये पत्रिकाएं लगाने वाले छात्रों को लगा कि ऐसे ही किसी शरारती तत्व की करतूत होगी। इस महीने द्धअगस्तऋ 'संवेग' में गुजरात के विकास के दावों को गलत साबित करते तथा ऐसे दावों पर सवाल खड़े करते हुए कुछ आंकड़े दिये गये थे। इसके अलावा 'प्रतिरोध' दीवारपत्रिका में मोदी के संदर्भ में अमर्त्य सेन द्वारा दिये गये बयान के बाद तथाकथित मोदी समर्थकों द्वारा अमर्त्य सेन की बेटी की अर्धनग्न तस्वीर फेसबुक पर डालने के स्त्रीविरोधी कृत्य पर विरोध प्रकट किया गया। यह दीवार पत्रिका लगने के बाद उसी रात मेडिकल कालेज से पुनः उसी नम्बर से फोन आया कि दोनों दीवारपत्रिकाओं को फाड़ दिया हूं। फिर उसके बाद फ़ोन पर लगातार धमकी देने का सिलसिला शुरू हुआ। फोन पर गालीगलौज भरे मैसेज़ किये गये। नाम और कमरा नम्बर पूछने पर मेडिकल कॉलेज का वह छात्र अपना नाम कभी पंकज तो कभी राजेश बताता और अपना रूम नं. कभी 161 तो कभी 170 बताया। फिर 9415651857, 8574380116 फोन नम्बरों से दो अन्य छात्रों ने भी गाली और धमकी दी। शहीद भगत सिंह विचार मंच के तीन साथी फिर से दीवार पत्रिका लगाने गये तो उसको भी फाड़ने की कोशिश की गयी। इसका विरोध करने पर एबीवीपी व बजरंग दल के लोगों को बुलाकर मारपीट की धमकी दी गयी। इसके बाद इन लोगों द्वारा शाम 7 बजे से लेकर रात के 12 बजे तक लगातार फोन करके सबक सिखाने, काटकर फेंक देने की धमकी दी जाती रही। फोन पर ये लोग कह रहे थे कि **जैसे मोदी ने गुजरात में मुसलमानों को कटवाया था उसी तरह तुम लोग भी काटे जाओगे।** शहीद भगत सिंह विचार मंच के कार्यकर्ताओं द्वारा यह कहने पर कि एक लोकतांत्रिक समाज में हर व्यक्ति को अभिव्यक्ति की आज़ादी है और अगर आपको हमारी बातें ठीक नहीं लगती हैं तो हम लोग मिलकर इन बातों पर बातचीत व बहस कर सकते हैं, या आप हमारे तर्कों को खारिज करते हुए अपनी दीवारपत्रिका तैयार कीजिए। इस पर उनका कहना था कि मोदी को कोई कुछ भी कहेगा, तो हम उसे फाड़ देंगे और दीवारपत्रिका मेडिकल कॉलेज में नहीं लगने देंगे और कहा कि अपना पता बताओ, तो तुम लोगों को सबक सिखाएं।

इस घटना के विरोध में शहीद भगत सिंह विचार मंच और स्त्री मुक्ति लीग के कार्यकर्ताओं ने इलाहाबाद में फासीवाद विरोधी मार्च निकाला जिसमें अनेक संगठनों के लोग और छात्र शामिल हुए। मार्च के दौरान अलोकतांत्रिक, फासीवादी व निरंकुश तौरतरीकों के खिलाफ पर्चे बांटे गए और जनता से लामबंद होने का आह्वान किया गया। कार्यकर्ताओं ने कहा कि हम ऐसी शक्तियों की धमकियों से जनता के हितों के बारे में लिखना व सच्चाई बयां करना कत्तई बन्द नहीं करेंगे और हर तरह के संघर्ष के लिये तैयार रहेंगे। कई सामाजिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों ने भी इलाहाबाद में फासिस्टों की इस गुण्डागर्दी की निंदा की।

लखनऊ में भी शहर के अनेक प्रमुख बुद्धिजीवियों, लेखकों व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इलाहाबाद में छात्रों-युवाओं की दीवार पत्रिकाओं - 'संवेग' तथा 'प्रतिरोध' में नरेन्द्र मोदी तथा संघ परिवार की नीतियों की आलोचना से बौखलाए साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा इन पत्रिकाओं को फाड़ने और पत्रिका से जुड़े सामाजिक कार्यकर्ताओं को धमकियां देने की कठोर शब्दों में निन्दा करते हुए उनके खिलाफ कार्रवाई की मांग की।

गौरतलब है कि, 'शहीद भगत सिंह विचार मंच' एवं 'स्त्री मुक्ति लीग' की तरफ से क्रमशः दो दीवार पत्रिकाएं 'संवेग' तथा 'प्रतिरोध' के नाम से इलाहाबाद में निकाली जाती हैं। ये पत्रिकायें पिछले दो सालों से निकाली जा रही हैं। 'संवेग' दीवार. पत्रिका तत्कालीन ज्वलंत मुद्दों और महत्वपूर्ण घटनाओं पर बेबाकी से अपनी जनपक्षधर राय रखी जाती है। यह पत्रिका अंधविश्वास, कट्टरता, जातिवाद, साम्प्रदायिकता और जनता के हितों के खिलाफ खड़ी शक्तियों पर लगातार और मजबूती से चोट करती रही है।

'प्रतिरोध' दीवारपत्रिका स्त्री मुक्ति लीग की तरफ से इस मकसद से शुरू की गई कि स्त्रियों का अपना एक वैचारिक मंच बनाया जाय; जिसके माध्यम से स्त्रियां अपनी भावनाओं को अपनी अन्य बहनों व संवेदनशील पुरुषों तक पहुंचा सकें। साथ ही स्त्री उत्पीड़न के विविध रूपों की शिनाख़्त की जा सके तथा उसके ख़िलाफ सशक्त प्रतिरोध खड़ा किया जा सके। ये दीवारपत्रिकाएँ शहर के 100 से अधिक स्थानों पर लगायी जाती हैं।

– मज़दूर बिगुल संवाददाता

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (नौवीं किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। 'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की गयी थी, जिसकी अब तक आठ किस्तें प्रकाशित हुई हैं। पिछले कुछ अंकों से इसका प्रकाशन नहीं हो पा रहा था लेकिन इस अंक से हम इसे फिर शुरू कर रहे हैं।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष किस तरह क़दम-ब-क़दम विकसित हुआ। हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। पिछली कड़ी से हम उन ग़लतियों पर नज़र डाल रहे हैं जिनकी वजह से कम्यून की पराजय हुई। इन ग़लतियों को ठीक से समझना और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक जंग में जीत के लिए उनसे सबक़ निकालना मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ज़रूरी है।

मज़दूर वर्ग के लिए पेरिस कम्यून के ऐतिहासिक सबक

बैरिकेडों पर संघर्ष की तैयारी में जुटी पेरिस की मेहनतकश जनता।
पेरिस कम्यून के बहादुर कम्यूनार्डों ने पेरिस में तो मज़दूर वर्ग की फौलादी सत्ता कायम की और बुर्जुआ वर्ग के साथ कोई रू-रियायत नहीं बरती, लेकिन वे भूल गये कि पेरिस के बाहर थियेर के पीछे सिर्फ फ्रांस के ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप के प्रतिक्रियावादी एकजुट हो रहे हैं।

1. कम्यून ने जो ऐतिहासिक कदम उठाये, उन्हें लेकर वह बहुत दूर तक आगे नहीं चल सका। अपने जन्म से ही वह दुश्मनों से घिरा हुआ था, जो उसे नेस्तनाबूद करने पर तुले हुए थे। **'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'** के शब्दों के अनुसार; बूढ़े यूरोप को **"कम्युनिज्म का जो हौवा"** 1848 में ही सता रहा था, उसे साक्षात पेरिस में खड़ा देखकर यूरोप के सभी देशों के पूँजीपतियों के कलेजे दहल उठे थे। कम्यून को कुचलने के लिए सभी प्रतिक्रियावादी ताकतें एकजुट हो गई थीं। पेरिस के मज़दूरों के विद्रोह के ठीक पूर्व **मार्क्स** और **एंगेल्स** का यह आकलन था कि अभी इसके लिए परिस्थितियाँ पूरी तरह तैयार नहीं हैं। उनका सुझाव था कि क्रान्ति कुछ और तैयारियों के बाद शुरू की जानी चाहिये। पर एक बार जब पेरिस कम्यून अस्तित्व में आ गया तो उन्होंने उसका क्रान्तिकारी अभिनन्दन और पुरज़ोर समर्थन किया। मार्क्स ने समाजवाद के उस शिशु मॉडल का अत्यन्त बारीकी से अध्ययन किया जो पेरिस के मज़दूरों ने अपनी पहलकदमी और सामूहिक रचनात्मकता से खड़ा किया था। इसके साथ ही मार्क्स कम्यून के भविष्य को लेकर लगातार बहुत अधिक चिन्तित थे और अपने सम्पर्कों तथा इण्टरनेशनल की फ्रांस शाखा के ज़रिये कम्यून को लगातार अपने सुझाव दे रहे थे।

2. मार्क्स यह स्पष्ट समझ रहे थे कि पेरिस कम्यून को कुचलने के लिये बिस्मार्क की जो प्रशियाई फौजें पेरिस के शहरपनाह के पास ही खड़ी थीं, वे या तो थियेर को मदद करतीं या फिर खुद ही पेरिस की ओर कूच कर देतीं। इसलिए वे लगातार राय दे रहे थे कि पेरिस कम्यून की जीत को पुख्ता करने के लिए जरूरी है कि पेरिस की कामगारों की सेना पेरिस में प्रतिक्रान्ति की हर कोशिश को कुचलकर बिना रुके वर्साय की ओर कूच कर जाये जो थियेर सरकार के साथ ही पेरिस के सभी रईसों का पनाहगाह बना हुआ था। उनका कहना था कि इससे कम्यून की जीत और पुख्ता हो जाती और सर्वहारा क्रान्ति पूरे देश में फैलायी जा सकती थी। यह भेद बाद में खुला कि थियेर के पास उस समय कुल जमा 27 हजार पस्तहिम्मत फौजी थे, जिन्हें पेरिस के एक लाख 'नेशनल गार्ड्स' चुटकी बजाते धूल चटा सकते थे।

मार्क्स ने कम्यून के प्रमुख नेताओं–फ्रांकेल और वाल्यां को आगाह किया कि पेरिस को घेरने के लिए थियेर और प्रशियाइयों के बीच सौदेबाज़ी हो सकती है, अत: प्रशियाई लश्करों को पीछे धकेलने के लिए मोंतमार्त्र पहाड़ी की उत्तरी पाख की किलेबन्दी कर लेनी चाहिये। मार्क्स इस बात को लेकर बहुत चिन्तित थे कि कम्यून वाले अपने को महज़ बचाव ही बचाव तक सीमित रखकर बेशकीमती समय गँवा रहे हैं और वर्साय वालों को अपने सैन्यबल की किलेबन्दी कर लेने का मौक़ा दे रहे हैं। उन्हों कम्यूनार्डों को लिखा कि **प्रतिक्रियावादी की माँद को ध्वस्त कर डालिये, फ्रांसीसी राष्ट्रीय बैंक के खज़ाने ज़ब्त कर लीजिये और क्रान्तिकारी पेरिस के लिए प्रान्तों का समर्थन हासिल कीजिये।**

एक कम्युनार्ड वीरांगना। बुर्जुआ सेना इन लड़ाकू स्त्रियों से ख़ास तौर पर भय खाती थी। कम्यून की पराजय के बाद ढूँढ़कर उन्हें गोली मारी गयी।

3. मार्क्स को यह भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों पर गठित एक पार्टी का अभाव उन ऐतिहासिक घड़ियों में कम्यून की गतिविधियों को बुरी तरह प्रभावित कर रहा था। इंटरनेशनल की फ्रांस शाखा सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक हरावल बनने से चूक गई थी। उसके अन्दर मार्क्सवादी विचारधारा के लोगों की संख्या भी बहुत कम थी। फ्रांसीसी मज़दूरों में सैद्धान्तिक पहलू बहुत कमज़ोर था। उस समय तक 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र', 'फ्रांस में वर्ग संघर्ष', 'पूँजी' आदि मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ अभी फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित भी नहीं हुई थीं। कम्यून के नेतृत्व में बहुतेरे ब्लांकीवादी और प्रूधोंवादी शामिल थे, जो मार्क्सवादी सिद्धान्तों से या तो परिचित ही नहीं थे, या फिर उसके विरोधी थे। आम सर्वहाराओं द्वारा आगे ठेल दिये जाने पर उन्होंने सत्ता हाथ में लेने के बाद बहुतेरी चीज़ों को सही ढंग से अंजाम दिया और आने वाली सर्वहारा क्रान्तियों के लिए बहुमूल्य शिक्षाएँ दीं, पर अपनी राजनीतिक चेतना की कमी के कारण उन्होंने बहुतेरी गलतियाँ भी कीं।

कम्यूनार्डों की एक अहम गलती यह थी कि वे दुश्मन की शान्तिवार्ताओं की धोखाधड़ी के शिकार हो गये और दुश्मन ने इस बीच युद्ध की तैयारियाँ मुकम्मिल कर लीं। दुश्मन का पूरी तरह सफाया न करना, वर्साय पर हमला न करना, और क्रान्ति को पूरे देश में न फैलाना कम्यून वालों की सबसे बड़ी भूल थी और सच यह है कि नेतृत्व में मार्क्सवादी विचारधारा के अभाव के चलते यह गलती होनी ही थी।

ज़बर्दस्त लड़ाई के बीच थोड़ी देर सुस्ताते और आगे की रणनीति बनाते वीर कम्युनार्ड। संघर्ष ने पेरिस के मेहनतकशों के बीच ज़बर्दस्त एकजुटता की भावना पैदा कर दी थी।

4. मार्क्स ने बाद में लिखा, **"जब वर्साय अपने छुरे तेज कर रहा था, तो पेरिस मतदान में लगा हुआ था; जब वर्साय युद्ध की तैयारी कर रहा था तो पेरिस वार्ताएँ कर रहा था।"** इसका नतीजा यह हुआ कि 1871 की मई आते-आते थियेर के सैनिकों ने पेरिस पर हमला बोल दिया। वर्साय के लुटेरों की भाड़े की सेना का कम्युनार्डों ने जमकर मुकाबला किया और एकबारगी तो उसे पीछे भी धकेल दिया, पर वर्साय की सेना पेरिस की घेरेबन्दी करके गोलाबारी करती रही। इसी दौरान प्रशा ने फ्रांस के बन्दी बनाये गये दसियों हज़ार सैनिकों को रिहा कर थियेर की भारी मदद की थी। थियेर की सेना दक्षिणी मोर्चे के दो किलों को जीतकर पेरिस की दहलीज पर पहुँच गई। प्रशा की सेना ने भी आगे बढ़ने में उनकी परोक्ष मदद की। 21 मई 1871 को वर्साय का दस्युदल अपने कसाइयों के छुरों के साथ पेरिस में घुस पड़ा। शहर की सड़कों-चौराहों पर और विशेषकर मज़दूर बस्तियों में घमासान युद्ध हुआ।

कम्यून की रक्षा के लिए लड़ने वालों में स्त्रियाँ हर कदम पर आगे थीं। घुड़सवार सेना के साथ मोर्चा लेती हुई स्त्रियों की टुकड़ी।
नीचे बायें: सेना ने जलते हुए पेरिस के खण्डहरों के बीच घेरकर मज़दूरों का कत्लेआम किया।

5. शहर की सड़कों-चौराहों पर और विशेषकर मज़दूर बस्तियों में घमासान युद्ध हुआ। आखिरकार, 8 दिनों के बेमिसाल बहादुराना संघर्ष के बाद पेरिस के बहादुर सर्वहारा योद्धा पराजित हो गये। इस खूनी सप्ताह में 30,000 कामगार कम्यून की रक्षा करते हुए शहीद हो गये। विजयी प्रतिक्रियावादियों ने सड़कों पर दमन का जो ताण्डव किया, वह बेमिसाल था। नागरिकों को कतारों मे खड़ाकर, हाथों के घट्ठों को देखकर कामगारों को अलग करके गोली मार दी जाती थी। गिरफ्तार लोगों के अतिरिक्त चर्च में शरण लिये लोगों और अस्पतालों में घायल पड़े सैनिकों को भी गोली मार दी गयी। उन्होंने बुजुर्ग मज़दूरों को यह कहते हुए गोली मार दी कि 'इन्होंने बार-बार बगावतें की हैं और ये खाँटी अपराधी हैं।' औरत-मज़दूरों को यह कहकर गोली मार दी गयी कि ये "स्त्री अग्नि बम" हैं और यह कि ये "सिर्फ मरने के बाद ही" औरतों जैसी लगती हैं। बाल मज़दूरों को यह कहकर गोली मार दी गई कि "ये बड़े होकर बागी बनेंगे।" यह नरसंहार पूरे जून के महीने चलता रहा। पेरिस लाशों से पट गया। सैन नदी खून की नदी बन गयी।

कम्युनार्डों ने बड़ी बहादुरी के साथ सेना का मुकाबला किया लेकिन अब तक सेना को पूरी तैयारी का मौका मिल चुका था। उसके पास हथियार और सैनिक भी ज़्यादा थे। एक-एक सड़क पर जूझने के बावजूद आख़िर उन्हें हारना पड़ा। पेरिस के सारे अमीर जो डर से भाग गये थे, अब मज़दूरों के कत्लेआम का नज़ारा देखने के लिए लौट आये थे। सड़कों के किनारे खड़े होकर वे तालियाँ बजाते थे जब मज़दूरों को गोली मारी जाती थी।

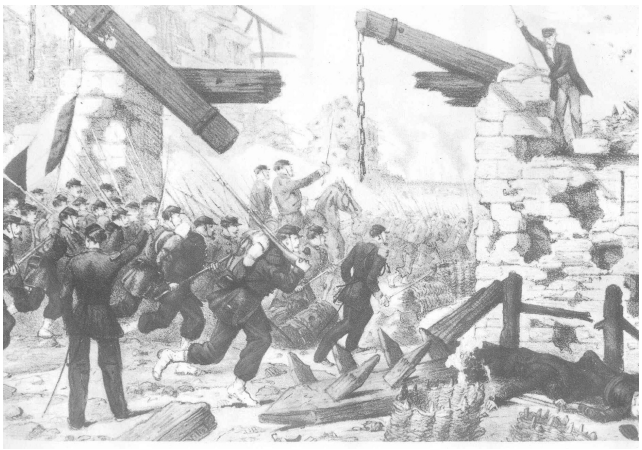

6. कम्यून खून के समन्दर में डुबो दिया गया। कम्यूनार्डों के रक्त से इतिहास ने मज़दूरों के लिए यह कड़वी शिक्षा लिखी कि सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति को अन्त तक चलाना होगा। सत्ता न तो शान्तिपूर्वक मिलेगी, न ही शान्तिपूर्वक उसकी क़िाजत की जा सकेगी। कम्यून की यह शिक्षा थी कि भागते हुए डकैतों का अन्त तक पीछा किया जाना चाहिये, पानी में डूबते चूहों को तैरकर किनारे आने का मौका नहीं देना चाहिये, दुश्मन को फ़िर से दम नहीं हासिल करने देना चाहिये और तब तक चैन की सांस नहीं लेनी चाहिये जब तक पूंजीवादी दुश्मन कहीं किसी भी कोने-अंतरे में जीवित हो। पेरिस कम्यून के बाद भी, विश्व इतिहास में मज़दूर वर्ग जब-जब इन शिक्षाओं को भूला, तब-तब उसे शिकस्त मिली।

7. पेरिस कम्यून के शहीदों ने अपने रक्त से एक अमिट इतिहास लिख डाला, सर्वहारा वर्ग की आगे की क्रान्तियों के मार्गदर्शन के लिए उन्होंने बहुमूल्य शिक्षाएं दीं और अपनी शहादतों से रोशनी की एक मीनार खड़ी कर दी।

कम्यून के जीवनकाल में ही कार्ल मार्क्स ने लिखा था : **"यदि कम्यून को नष्ट भी कर दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं, जब तक मज़दूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तब तक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।"** मज़दूरों की पहली हथियारबन्द बगावत और पहली सर्वहारा सत्ता की अहमियत के नजरिये से ही मार्क्स ने कहा था, **"18 मार्च का गौरवमय आन्दोलन मानव जाति को वर्ग-शासन से सदा के लिए मुक्त कराने वाला महान सामाजिक क्रान्ति का प्रभात है।"**

मज़दूरों के कत्लेआम का नज़ारे देखने के लिए सड़कों के किनारे जुटे पेरिस के हरामख़ारे अमीर और कुलीन लोग।

8. पेरिस में कम्यून की पराजय के दो दिनों बाद, मार्क्स ने 30 मई , 1871 को पहले इण्टरनेशनल की सामान्य परिषद की बैठक में कम्यून का मूल्यांकन करते हुए एक रिपोर्ट पढ़ी। यही रिपोर्ट 'फ्रांस में गृहयु)' शीर्षक प्रसि) कृति है, जो आज भी हम सबके लिए एक बेहद जरूरी किताब है।

मार्क्स ने कम्यून की परिस्थितियों, कारणों और अनुभवों का निचोड़ निकालते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि **"मज़दूर वर्ग बनी-बनाई राज्य मशीनरी को ज्यों का त्यों हाथ में नहीं ले सकता और उसे अपना मकसद पूरा करने के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता।ह उन्होंने बताया कि सर्वहारा वर्ग को पुरानी राज्य मशीनरी को 'तोड़ने' और 'चकनाचूर करने के लिए' क्रान्तिकारी हिंसा का इस्तेमाल करना चाहिये तथा सर्वहारा अधिनाकत्व को लागू करना चाहिए।"**

9. इस तरह मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के अनुभवों के आधार पर क्रान्ति के विज्ञान में एक महत्वपूर्ण इज़ाफा किया, जैसा कि लेनिन ने बताया था कि मार्क्सवादी वह नहीं है जो सिर्फ वर्ग-संघर्ष को मानता है, बल्कि वह है जो वर्ग-संघर्ष के साथ सर्वहारा अधिनायकत्व को भी मानता है।

मार्क्स ने बुर्जुआ और सर्वहारा राज्यसत्ता के प्रश्न पर जो मौलिक विचार रखा तथा लेनिन ने जिसे आगे बढ़ाया, उसका स्पष्ट प्रस्थान बिन्दु पेरिस कम्यून की शिक्षाओं से ही होता है। मार्क्स ने यह स्पष्ट किया कि ह्सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला अवयव सर्वहारा वर्ग की सेना है। मज़दूर वर्ग को अपनी मुक्ति का अधिकार यु)भूमि में प्राप्त करना चाहिये।ह

पेरिस कम्यून की असफलता का निचोड़ निकालते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने यह और अधिक स्पष्ट किया कि सर्वहारा वर्ग की सत्ता शस्त्रबल से हासिल होती है और इसी के सहारे कायम रह सकती है। यह तभी कायम रह सकती है जबकि बुर्जुआ वर्ग की सत्ता को ध्वस्त करने के बाद भी उसे सम्भलने का मौका न दिया जाये और उसके समूल नाश के लिए जंग जारी रखी जाये।

अगले अंक में जारी...

कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किसकी सेवा करता है (इक्कीसवीं किश्त)

भारतीय राज्यसत्ता : पूँजीपति वर्ग की तानाशाही को मूर्त रूप देता एक दमनकारी तन्त्र

भारतीय संविधान के जिन प्रावधानों की हम इस धारावाहिक लेख में विवेचना कर चुके हैं उनके अतिरिक्त संविधान में एक बहुत बड़ा हिस्सा भारतीय राज्यसत्ता और उसके विभिन्न अंगों - कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका - पर केन्द्रित है। लोकतन्त्र का मायाजाल बिछाने के लिए संविधान में ऐसे तमाम गौढ़ प्रावधानों पर भी खूब स्याही ख़र्च की गयी है जिन्हें दरअसल संविधान में रखने की ज़रूरत ही नहीं थी क्योंकि उनके लिए विशेष विधेयक बनाने से ही काम चल जाता। मिसाल के लिए राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल का निर्वाचन कैसे होगा, राष्ट्रपति पद, उप-राष्ट्रपति और संसद सदस्य के उम्मीदवार के लिए पात्रता और शर्तें क्या होंगी, राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति और मंत्रिमण्डल क्या शपथ लेंगे, संसद का गठन कैसे होगा, संसद के सत्र कितने होंगे, हर साल संसद के पहले सत्र में राष्ट्रपति का भाषण होगा, संसद का एक सचिवालय होगा, उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों को वेतन कैसे मिलेगा, उच्चतम न्यायालय के अधिकारी और सेवक का व्यय आदि-आदि। यही वजह है कि भारतीय संविधान इतना मोटा हो गया है कि इसे दुनिया का सबसे लम्बा संविधान कहा जाता है। लेकिन संविधान के पोथे के मोटेपन से भ्रमित होने की बजाय जब हम इसके द्वारा स्थापित राज्यसत्ता के चरित्र के बारे में गहराई से पड़ताल करते हैं तो पाते हैं कि यह समाज में मौजूद वर्गों से ऊपर कोई स्वायत्त और तटस्थ तन्त्र न होकर वास्तव में पूँजीपति शासक वर्गों के हितों की नुमाइंदगी करने वाली एक दमनकारी दैत्याकार मशीनरी है जो आम मेहनतकश जनता के हितों के ख़िलाफ़ है और उसके ऊपर बलपूर्वक स्थापित है। इस लेख की पिछली किश्तों में हम देख चुके हैं कि यह राज्यसत्ता जनता की बेहद बुनियादी ज़रूरतों - भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य - को भी पूरा करने की भी गारण्टी नहीं देती। यानी कि क्लासिकीय बुर्जुआ जनवाद के पैमाने से भी भारतीय राज्यसत्ता को जनवादी नहीं कहा जा सकता है।

शासन के कार्यभारों को विधायिका (कानून बनाना) और कार्यपालिका (कानून लागू करना) में बाँटने के पीछे तर्क यह दिया जाता है कि इससे संसद के माध्यम से सरकार पर जनता का नियन्त्रण रहेगा। परन्तु संसदीय लोकतन्त्र का हास्यास्पद पहलू यह है कि चूँकि संसद में बहुमत प्राप्त करने वाली पार्टी या पार्टियों का गठबन्धन ही सरकार बनाता है इसलिए सरकार जिस तरह का कानून चाहे वैसा कानून पास करा सकती है। यही नहीं पिछले कुछ दशकों से इस तथाकथित लोकतन्त्र में एक नयी परम्परा पनपी है जिसमें कि सरकार अहम नीतिगत निर्णयों में भी संसद की मंजूरी लेने की औपचारिकता भी निभाने की जहमत नहीं उठाती, बल्कि कार्यकारी आदेशों से ही ये निर्णय ले लिये जाते हैं। मिसाल के लिए देश के नागरिकों के निजता के जनवादी अधिकार का हनन करने का प्रावधान करने वाली आधार योजना को बिना संसद की मंजूरी लिये लागू कर दिया गया है। ऐसे में सरकार पर संसद के नियन्त्रण का कोई ख़ास मायने नहीं रह जाता। वैसे भी भारतीय संसद (और राज्यों की विधान सभाओं) ने पिछले छह दशकों में निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि यह बहसबाजी, सिरफुड़ौव्वल, गुण्डागर्दी और अभद्रता के अड्डे से ज़्यादा कुछ नहीं है। संसद और विधान सभाओं के अधिकांश सदस्य करोड़पति होते हैं और उनमें से अच्छी खासी संख्या हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे जघन्य अपराधों में लिप्त हिस्ट्रीशीटरों की होती है। मौजूदा लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं है, परन्तु एक ऐसा समूह है जो निर्विवाद रूप से बहुमत में है और वो है करोड़पतियों का समूह! जी हाँ! मौजूदा लोकसभा के सदस्यों की घोषित सम्पत्ति के अनुसार 545 सदस्यों में से 306 करोड़पति हैं। पिछली लोकसभा की तुलना में करोड़पतियों की संख्या में सौ फ़ीसदी से भी ज़्यादा का इज़ाफ़ा हुआ है। यह एक खुला रहस्य है कि इन महानुभावों की घोषित आय इनकी वास्तविक आय का एक छोटा सा हिस्सा भर होती है। एक ऐसे देश में जिसकी तीन चौथाई से भी ज़्यादा आबादी 20 रुपये प्रतिदिन से भी कम आय में अपना गुजर बसर करती है, ऐसे धनपशुओं को जनप्रतिनिधि कहना जनता का अपमान करना है।

इन धन्नासेठों और अपराधियों की तू-तू-मैं-मैं और नूराकुश्ती के लिए संसद के सत्र के दौरान प्रतिदिन करोड़ो रुपये खर्च होते हैं जो देश की जनता के खून-पसीने की कमाई से ही सम्भव होता है। उसमें भी सत्र के ज़्यादातर दिन तो किसी न किसी मुद्दे को लेकर संसद में कार्यस्थगन हो जाता है और फिर जनता के लुटेरों को अय्याशी के लिए और वक़्त मिल जाता है। आम जनता की ज़िन्दगी से कोसों दूर ये लुटेरे आलीशान बंगलों में रहते हैं, सरकारी ख़र्च से हवाई जहाज और महँगी गाड़ियों से सफर करते हैं और विदेशों और हिल स्टेशनों पर छुट्टियाँ मनाते हैं। एक ऐसे देश में जहाँ बहुसंख्यक जनता को दस-दस बारह-बारह घण्टे खटने के बाद भी दो जून की रोटी के लाले पड़े रहते हैं, जनता के तथाकथित प्रतिनिधियों की विलासिता भरी ज़िन्दगी अपने आप में लोकतन्त्र के लम्बे-चौड़े दावों को एक भद्दा मज़ाक बना देती है।

ई पी डब्ल्यू पत्रिका में छपे एक लेख के मुताबिक वर्ष 2009 के लोकसभा चुनावों के दौरान प्रति निर्वाचन क्षेत्र में बड़ी पार्टियों के उम्मीदवारों ने औसतन 30 करोड़ रुपये खर्च किये और छोटी पार्टियों के उम्मीदवारों ने औसतन 9 करोड़ रुपये खर्च किये। ग़ौरतलब है कि यह औसत खर्च है यानी कि जो महानुभाव इन चुनावों में जीत हासिल कर संसद में विराजमान हैं उन्होंने इससे भी ज़्यादा ख़र्च किये हैं। अब तो इसकी ताईद विभिन्न दलों के नेता खुद ही कर रहे हैं। अभी हाल ही में महाराष्ट्र के पूर्व उपमुख्यमन्त्री भाजपा के गोपीनाथ मुण्डे मीडिया के सामने रौ में आकर ये कह गये कि पिछले लोकसभा चुनावों में उन्होंने 8 करोड़ रुपये ख़र्च किये। इसी प्रकार कांग्रेस के राज्यसभा सांसद चौधरी बीरेन्द्र सिंह के मुँह से बरबस ही यह सच्चाई निकल गयी जब उन्होंने कहा कि राज्य सभा की टिकट पाने के लिए 100 करोड़ रुपये खर्च करने पड़ते हैं। अब इस सवाल का ज़वाब देने में कोई ईनाम नहीं है कि ये करोड़ों रुपये आते कहाँ से हैं! जी हाँ ! यह काला धन इस देश के नामी गिरामी उद्योगपतियों, व्यापारियों और सटोरियों की तिजोरी से आता है जो वे आम मेहनतकश जनता का हाड़-माँस गलाकर इकट्ठा करते हैं। ज़ाहिर है कि ये उद्योगपति, व्यापारी और सटोरिये धर्मार्थ में इतना धन नहीं फूँकते हैं, वे इसका 'रिटर्न' भी चाहते हैं। इसलिए संसद सदस्य और मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपने पूँजीपति आकाओं के हित में नीतियाँ और कानून बनाकर अपना कर्ज़ अदा करते हैं। पूँजीपतियों में जो दूरंदेश और शातिर होते हैं वे किसी एक पार्टी को चन्दा देने की बजाय कई पार्टियों का चन्दा देते है ताकि सत्ता में चाहे जो भी पार्टी आये वह उनके ही हितों को साधे! यही नहीं, इनमें से कई पूँजीपति तो सत्ता में प्रत्यक्ष दख़ल देने के मक़सद से राज्य सभा के चोर रास्ते से संसद में भी पहुँच जाते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि भारतीय बुर्जुआ लोकतन्त्र मार्क्स एवं एंगल्स द्वारा लिखे गये कम्युनिस्ट घोषणापत्र की उन पंक्तियों का जीता जागता उदाहरण है जिसमें उन्होंने कहा था कि बुर्जुआ सरकारें समूचे पूँजीपति वर्ग के साझा हितों को साधने वाली मैनेजिंग कमेटी के रूप में काम करती हैं।

शासक वर्ग के टुकड़ों पर पलने वाले बुर्जुआ कलमघसीट और भाड़े के पत्रकार यह बताते नहीं थकते कि भारत में बहुदलीय संसदीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था होने की वजह से जनता को पर्याप्त विकल्प मिल जाते हैं और यदि एक पार्टी सत्ता में आने के बाद अच्छा प्रदर्शन नहीं करती तो जनता को यह अधिकार है कि वह अगले चुनावों में उस पार्टी को हटाकर सत्ता की बागडोर दूसरी पार्टी को सौंपे दे। लेकिन इन लफ्फ़ाजियों पर यकीन करने की बजाय जब हम इस तथाकथित लोकतन्त्र की ज़मीनी हक़ीकत पर ग़ौर करते हैं तो यह दिन के उजाले की तरह साफ़ हो जाता है कि विकल्प के रूप में जो तमाम रंग बिरंगी पार्टियाँ मौजूद हैं वो सभी लुटेरे पूँजीपति वर्ग के ही विभिन्न धड़ों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके दिखावी मतभेद महज़ जनता को भ्रमित करने के मक़सद से उभारे जाते हैं। जनता की मेहनत की लूट और पूँजीपतियों के मुनाफ़े को बढ़ाने वाली आर्थिक नीतियों के सवाल पर कमोबेश सभी पार्टियों में आम सहमति है। इस प्रकार इस लोकतन्त्र के प्रपंच में होने वाले चुनाव जनता को महज़ इतना अधिकार देते हैं कि वो अपने ही लुटेरों के विभिन्न गिरोहों में से किसी एक को चुन ले! राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले चुनावों में हिस्सा लेने वाली अधिकांश पार्टियाँ किसी विचारधारा पर नहीं बल्कि एक राजनीतिक परिवार के प्रति वफ़ादारी और चाटुकारिता के आधार पर संगठित होती हैं। जो पार्टियाँ विचारधारा के आधार पर संगठित होने का दंभ भरती हैं वे या तो जनता को धर्म या जाति के नाम पर बाँटकर अपना वोटबैंक सुनिश्चित करती हैं या फिर वे मेहनतकश जनता के हितों की नुमाइंदगी के नाम पर गरमागरम बातें करने वाली मज़दूर आन्दोलन की गद्दार पार्टियाँ हैं। इन तमाम रंग-बिरंगी पार्टियों में एक और चीज़ साझा है और वह यह कि इन सभी में अन्तरपार्टी जनवाद जैसी कोई चीज़ नहीं होती क्योंकि सारे अहम फैसले हाई कमाण्ड की ओर से लिये जाते हैं। वित्त के मामले में भी ये सभी पार्टियाँ निहायत ही गैर-पारदर्शी तरीके से काम करती हैं, इनके द्वारा उगाहे जाने वाले धन का कोई भी ब्योरा जनता के सामने नहीं आता और न ही उनकी कोई ऑडिट होती है। अभी हाल ही में जब मुख्य सूचना अधिकारी ने इन पार्टियों को सूचना के अधिकार के दायरे में लाने की बात की तो अपने तमाम दिखावी मतभेदों को किनारे कर इन सभी पार्टियों ने एक सुर में इसका विरोध कर अपनी असलियत जनता के सामने खुद ही उघाड़ कर रख दी।

जनता की मेहनत से अर्जित धन को पानी की तरह बहा कर और पुलिस और पैरामिलिटरी बलों की भारी मौजूदगी में होने वाली चुनावों की नौटंकी के बाद जब यह तय हो जाता है कि अगले पाँच साल सत्ता चलाने का ठेका लुटेरों के किस गिरोह को मिला है, तो फिर मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए जोड़तोड़ शुरू हो जाती है। पिछले दो दशकों से चूँकि किसी एक पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता इसलिए कई पार्टियों का गठबन्धन सरकार चलाता है। मिलीजुली सरकारों के इस दौर में क्षेत्रीय पार्टियों की भूमिका बढ़ने की वजह से देश की विभिन्न राज्यों की क्षेत्रीय बुर्जुआजी की राजनीतिक ताकत बढ़ी है। नीरा राडिया टेप काण्ड में यह सच्चाई साफ़ उभर कर आयी कि मन्त्रिमण्डल बनाने की जोड़तोड़ में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय पूँजीपतियों के विभिन्न गुट मोलतोल कर यह तक तय करते हैं कि अमुक मन्त्रालय में कौन मन्त्री बनेगा। ज़ाहिर है कि पूँजीपतियों के विभिन्न गुटों के मोलतोल से बनी सरकार पूँजीपतियों के ही हित में काम करेगी। ऐसी सरकार से यह अपेक्षा कोई अनाड़ी ही कर सकता है कि वह जनहित में काम करे।

भारतीय संविधान में कार्यपालिका की संरचना को लेकर एक पूरा अध्याय लिखा गया है। यह संरचना भी ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली से उधार ली गयी है और इसको देशी दिखाने के लिए महज़ नामों में कुछ शाब्दिक बदलाव कर दिये गये हैं। यह संरचना अपने आप में संविधान निर्माताओं की बौद्धिक गुलामी का ही एक नमूना है। ब्रिटेन में सरकार की नीतियों को लागू करने की ज़िम्मेदारी कैबिनेट की होती है और सारे फैसले महारानी के नाम पर लिये जाते हैं। इसी तर्ज़ पर भारत में भी मन्त्रिमण्डल का सारा कामकाज राष्ट्रपति के नाम किया जाता

(पेज 2 पर जारी)

राष्ट्रपति मोर्सी सत्ता से किनारे, मिस्र एक बार फिर से चौराहे पर

नवगीत

दो साल पहले 'अरब बसन्त' के समय मिस्र की राजधानी काहिरा का तहरीर चौक लोगों के बेमिसाल विरोध-प्रदर्शन का केन्द्र बना था जिसने 30 साल से सत्ता पर काबिज हुस्नी मुबारक को चलता किया। तकरीबन ढाई साल के बाद तहरीर एक बार फिर से मानवीय इतिहास के सबसे बड़े विरोध-प्रदर्शन में से एक का केन्द्र बना है तथा एक और तानाशाह बनते जा रहे इस्लामिक राजनैतिक दल मुस्लिम ब्रदरहुड से सम्बधित राष्ट्रपति मोहम्मद मोर्सी को लोगों के रोष ने चलता करने का मौका पैदा किया है। फिलहाल सत्ता मिस्र की फौज ने संभाल ली है और उसने छह महीनों में मुस्लिम ब्रदरहुड द्वारा कायम किए गए संविधान में सुधार, आम चुनाव और राष्ट्रपति के चुनाव का वायदा किया है और लोगों के रोष आंदोलन रुके हुए हैं। लेकिन दूसरी ओर मोर्सी के समर्थक सड़कों पर अपने ढंग से विरोध कर रहे हैं। घटनाओं के पीछे की छानबीन और भविष्य की संभावनाओं के बारे में कुछ चर्चा करने से पहले जरूरी है कि हम तहरीर-2 के घटनाक्रम के बारे में कुछ कहें।

तहरीर-2 : घटनाओं का संक्षिप्त विवरण

'अरब बसन्त' के चलते हुस्नी मुबारक की सरकार गिरने के पश्चात मिस्र की फौज ने सुप्रीम कार्डासिल बना कर आरजी तौर पर सरकार की जगह ले ली थी। इसके बाद अलग-अलग राजनीतिक दलों की आपस में और साथ ही फौज के साथ चली डेढ़ बर्ष लंबी कशमकश के बाद जून 2012 में मुस्लिम ब्रदरहुड के मोहम्मद मोर्सी ने राष्ट्रपति चुनाव जीत कर देश के प्रधान का पद संभाला था। इन चुनावों में मुस्लिम ब्रदरहुड द्वारा जीत हासिल करने की वजह यह नहीं थी कि उसने अरब बसन्त में मिस्र के लोगों की अगुवाई की थी, वह तो शुरुआत में अरब बसन्त में शामिल भी नहीं थी। जब हुस्नी मुबारक का बिस्तर गोल होना तकरीबन तय हो चुका था, तब जाकर वह रोष-प्रदर्शनों में शामिल हुआ, वह भी ज्यादातर दिखावे के लिए। अरब बसन्त की अगुवाई मुख्य तौर पर नौजवान और मजदूर संगठनों, और साथ ही बुर्जुआ उदारपंथी राजनीतिक दलों के हाथ में थी। लेकिन इन दलों का सामाजिक-राजनैतिक सांगठनिक ढांचा मुस्लिम ब्रदरहुड के मुकाबले काफी कमजोर था। मुस्लिम ब्रदरहुड ने लोगों को गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई से राहत दिलाने और मुबारक सरकार की अमरीकी साम्राज्य और इजराइल के आगे घुटने टेकने की नीति को त्यागने के एजंडे के नीचे चुनाव लड़ा। साथ ही उसने लोगों के अंदर मौजूद धार्मिक भावनाओं का भरपूर फायदा उठाया और चुनाव में जीत हासिल की। लेकिन जैसा कि पहले से ही काफी स्पष्ट था कि मुस्लिम ब्रदरहुड के ऊपर अमरीकी "हाथ" है और वह देसी-विदेशी पूँजी के गठजोड़ के खिलाफ जा ही नहीं सकता और ऐसा ही हुआ।

विदेश नीति के फ्रण्ट पर मोर्सी ने मुबारक से कुछ भी अलग नहीं किया; वहीं अमरीका से फ़ौजी सामान खरीदने के लिए सहायता हासिल की, फलस्तीन के लोगों के संघर्ष में कोई सरगर्म हिमायत देने से किनारा किया, इजरायल के आगे घुटने टेकने वाले कैंप-डेविड समझौते को जारी रखा, अमरीकी साम्राज्यवादियों और इजरायल के खिलाफ लड रहे सीरिया की मिस्र में स्थिति एम्बैसी को भी बंद कर दिया। घरेलू फ्रंट पर भी मोर्सी ने बेरोजगारी और महंगाई पर काबू पाने और लोगों की आर्थिक दिक्कतों को कम करने के लिए कुछ नहीं किया, उल्टा उसने मुस्लिम ब्रदरहुड के सत्ता पर मुकम्मल कब्जा करने के एजंडे को लागू करने का रास्ता पकड़ा। उसने लोगों के हाथ में 'शरियत कानून' का झुनझुना थमा कर रिझाने की कोशिश की और साथ ही राष्ट्रपति को असीम ताकत का मालिक बना कर तानाशाह बनने की कोशिशें आरंभ कर दी। उसकी यह कोशिश और उसकी सरकार द्वारा बनाए गए संविधान का विरोधी पक्षों जिनमें वही पक्ष थे जिन्होंने "रोटी, आजादी और सामाजिक न्याय" के नारे तले अरब बसन्त की अगुवाई की थी, की तरफ से तीक्ष्ण विरोध हुआ। लोगों में अभी मोर्सी से उम्मीदों के भ्रम मौजूद थे, इसीलिए मुस्लिम ब्रदरहुड इन कानूनों को लोगों की सहमती दिलाने में कामयाब हो गई परन्तु जल्दी ही मोर्सी के ढोल की पोल खुलना शुरू हो गई और मोर्सी तथा ब्रदरहुड का विरोध कम होने की बजाय बढता गया। मिस्र के 35 अलग अलग राजनैतिक दलों ने "क्रांति बचाओ राष्ट्रीय मोर्चा" बनाकर मोर्सी सरकार के विरोध को और तीक्ष्ण कर दिया। अप्रैल, 2013 में पांच सामाजिक कार्यकर्ताओं ने 'तमरुद' (बगावत) नाम का ग्रुप बनाकर ऐलान किया कि यह ग्रुप मोर्सी सरकार को गद्दी से उतारने के लिए 30 जून, 2013 तक डेढ़ करोड लोगों के हस्ताक्षर जुटाएगा। डेढ़ करोड का आंकड़ा मोर्सी की तरफ से राष्ट्रपति चुनाव जीतने के समय हासिल किए मत से ज्यादा है। लोगों की तरफ से इस अभियान को व्यापक समर्थन मिला। 30 जून से एक सप्ताह पहले ही डेढ़ करोड़ का आंकड़ा हासिल कर लिया गया और 30 जून तक मोर्सी को सत्ता से उतारने के लिए 2.2 करोड़ लोग हस्ताक्षर कर चुके थे। इसके कार्यकर्ताओं ने गरीब इलाकों, मजदूर बस्तीओं, मजदूरों के काम स्थानों, हड़तालों, दफ्तरों में जाकर, ट्रैफिक सिग्नलों पर खड़े होकर, गलियों-सड़कों पर आम लोगों को सम्बोधित करके हस्ताक्षर जुटाए। बाकायदा कागजों पर हस्ताक्षर करने वाले हर इंसान के राष्ट्रीय पहचान नंबर से रिकार्ड रखा गया, अनपढ़ों के अंगूठों के निशान लिए गए।

लोगों से मिली हिमायत को देखते हुए 'तमरुद' एक हस्ताक्षर मुहिम से आगे बढ़ चुकी थी। इसके नेताओं ने अपील जारी की कि मोर्सी के एक साल पूरा होने के दिन से पहले के एक सप्ताह में पूरे सात दिन रोष-प्रदर्शन किये जाएं। मोर्सी के खिलाफ पहले का बिखरा हुआ विरोध अब एकजुट होने लगा। रोष प्रदर्शन शुरू हो गए। 26 जून को 'तमरुद' की तरफ से तहरीर चौक की तरफ कूच करने का आह्वान किया गया। 30 जून तक तहरीर 'मोर्सी गेट-आउट' के नारों से गूँज रहा था। 'तमरुद' की तरफ से पूरे मिस्र के सभी सरकारी दफ़्तरों में काम करने वाले कर्मचारियों को काम बंद करने और सिविल नाफरमानी अन्दोलन में शामिल होने की अपील जारी की गई जिसको भरपूर समर्थन मिला। पूरे मिस्र के अलग-अलग शहरों में आम लोग शहरों के मुख्य केन्द्रों पर अनिश्चितकालीन धरनों पर बैठ गए और सब की पहली मांग थी - 'मोर्सी बाहर, नए सिरे से चुनाव'। अंदाजों के मुताबिक पूरे मिस्र में 3.7 करोड़ लोगों ने इस आंदोलन में हिस्सा लिया और सड़कों पर मोर्सी के खिलाफ नारे लगाए। मोर्सी ने भी मुबारक की तरह पहले सत्ता पर कब्जा बनाये रखने के लिए हर हथकंडा इस्तेमाल किया, उसने खुद को "मिस्र की फौज का सुप्रीम कमांडर" कह कर लोगों को धमकाया और साथ ही जनवाद की दुहाई दी, जनवाद की रखवाली के लिए जान तक देने के बयान दिए पर लोग कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं थे। लोग राष्ट्रपति भवन और मोर्सी की रिहायश तक घेरने की तैयारी करने लगे।

30 जून को आंदोलन की व्यापकता को देखते हुए यह साफ लग रहा था कि मोर्सी के दिन अब लद गए हैं। 1 जून को मिल्टरी ने राजनीतिक दलों को 48 घंटों के अंदर-अंदर आपसी मतभेद सुलझा कर राष्ट्रीय सरकार बनाने का अल्टीमेटम दे दिया। मोर्सी के विरोधियों ने सरकारी दल के साथ कोई मशवरा करने से पहले ही मना कर दिया था। 3 जुलाई को सेना ने देश में शांति और सुरक्षा को बनाए रखने के लिए लोगों की तरफ से सत्ता को संभालने का बहाना करके मोर्सी को राष्ट्रपति के पद से हटा दिया और सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश महमूद मन्सूर को राष्ट्रपति नियुक्त कर सत्ता संभाल ली। अब मुस्लिम ब्रदरहुड के पक्षधरों ने मोर्सी के पक्ष में आंदोलन करने शुरू कर दिए और मुस्लिम ब्रदरहुड ने मोर्सी को दोबारा पदासीन करने के लिए आंदोलन शुरू कर दिया है। मुस्लिम ब्रदरहुड ने हथियारबंद कारकुन भी इस मुहिम में झोंक दिए हैं जिन्होंने मुस्लिम ब्रदरहुड के आम कारकुनों के साथ मिलकर फौज के ठिकानों पर छिटपुट हमले भी किये हैं। राजधानी काहिरा के बीच फौज के मुख्य ठिकाने के आगे मुस्लिम ब्रदरहुड के हिमायतियों के ऐसे एक धरने के दौरान सेना ने गोली चला दी जिसके कारण 50 से ऊपर लोग मारे गए। मोर्सी के सत्ता से हटने के बाद मुस्लिम ब्रदरहुड विरोधियों को भी हिंसा का निशाना बना रहा है और इस के लिए "सनईपर शूटरों" का उपयोग करके टकराव उत्पन करने और धार्मिक मुल्लाओं, नेताओं की तरफ से नफ़रत फैलाने का काम भी किया जा रहा है। मोर्सी के पक्ष और सेना तथा विरोधियों में हिंसक टकराव जारी हैं और इस हिंसा में अब तक एक हजार से ऊपर लोग मारे जा चुके हैं, इन में ज्यादा सेना द्वारा मोर्सी समर्थकों पर किये हमले में मरे हैं। भविष्य क्या रास्ता पकड़ता है इस बारे में अगले हिस्से में चर्चा करते हैं।

मिस्र की वर्तमान जनबगावतः वर्तमान और भविष्य से जुड़े कुछ सवाल

1952 में रैडिकल बुर्जुआ नेता नासिर की तरफ से सत्ता संभालने के बाद मिस्र लगातार पूंजीवादी रास्ते पर आगे बढा और जहां अच्छा खासा देसी पूंजीपति वर्ग पैदा हो चुका है जो सत्ता पर काबिज है। नासिर के दौर में बेशक मिस्र के पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्य विरोधी रुख अपनाया लेकिन समय गुजरने के साथ उस को साफ हो गया कि आगे बढ़ने के लिए साम्राज्यवादी पूँजी के साथ गठजोड़ बनाना जरूरी है। दूसरी तरफ साम्राज्यवादी अमेरिका के लिए मिस्र बहुत अहम देश है। मिस्र अरब क्षेत्र का आबादी के हिसाब से सबसे बड़ा देश है और क्षेत्र में इसकी रणनीतिक पोजीशन बहुत अहम है। इस को कण्ट्रोल में रखना अमरीकी साम्राज्य के लिए अरब क्षेत्र पर अपना प्रभाव बनाने और इस क्षेत्र में अपने हितों की रक्षा करने के लिए अहम तो है ही, अफ्रीका महाद्वीप में अपने हितों की रक्षा के लिए मिस्र उसका अहम ठिकाना और साथी है। मुबारक की सरकार देसी-विदेशी पूँजी के गठजोड़ की सत्ता थी और मोर्सी सरकार का वर्गीय चरित्र भी यही था। आज के मिस्र में और कुछ सम्भव ही नहीं है, सिर्फ मजदूर वर्ग की सत्ता ही इसका विकल्प है। अरब बसन्त के कारण बेशक मुबारक सत्ता से परे कर दिया गया था पर इससे सत्ता के मूल चरित्र में कोई फर्क नहीं पड़ा क्यूँकि अगर कोई क्रांतिकारी सरकार कायम नहीं होती है तो सत्ता तब्दीली सिर्फ चेहरों की अदला बदली ही होती है। उस समय यह स्पष्ट था कि कोई क्रांतिकारी सरकार कायम होने की संभावना नहीं है क्योंकि समाज के आर्थिक सामाजिक ढांचे की कायापलट का प्रोग्राम पेश करने वाली कोई भी पार्टी इस हैसीयत में मौजूद नही थी कि वह सत्ता संभाल सकती। दो साल के अंतराल में ही यह बात एकदम साफ हो गई है। मोर्सी सरकार भी मुबारिक सरकार से किसी भी तरह अलग साबित नहीं हुई। उसकी नीतियाँ भी बुनियादी तौर पर वही थी जिनके साथ देसी-विदेशी पूँजी के हित सलामत रहें। अब एक बार फिर मिस्र 2011 की तरह ही फिर से उसी चौराहे पर खड़ा है।

मिस्र की सेना देसी-विदेशी पूँजी का सबसे भरोसेमंद स्तंभ है। जब पूंजीपति वर्ग के बाकी चेहरे लोगों के गुस्से का शिकार बनते हैं और स्थिति विस्फोटक बनने लगती हैं तो ऐसे समय मिस्र की सेना पूँजी की रक्षा के लिए आगे आई है। उसने ऐसा अरब बसन्त के समय भी किया और अब एक बार फिर इसी को दोहराया। मोर्सी की सरकार को अमरीकी साम्राज्य का 'आशीर्वाद' हासिल था लेकिन जब लोगों ने इसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया तो स्थिती यह हो गई कि मुबारिक की तरह मोर्सी का बना रहना भी असम्भव हो गया। जब लोगों के विद्रोह का आगे बढकर पूँजीवादी ढांचे के लिए खतरा बन जाने के आसार पैदा होने लगे तो मोर्सी मिस्र के पूँजीपति वर्ग और अमरीका का भरोसा गंवा बैठा। बदली हुई स्थिति में एक बार फिर सेना पर ही पूँजी ने अपना भरोसा जताया। अरब बसन्त के मुकाबले फर्क सिर्फ इतना है कि इस बार अमरीका और मिस्र के पूंजीपति वर्ग ने यह फैसला बहुत जल्दी ले लिया और 4 दिन में ही मोर्सी को रास्ता साफ करने के लिए कह दिया। सेना ने बहाना देश में सुरक्षा और शांति का बनाया है और लोगों की तरफ से सत्ता संभालने का नाटक किया है लेकिन यह दिन के उजाले की तरह साफ है कि अमेरिकी साम्राज्यवाद के समर्थन एवं मशवरे से ही यह संभव हुआ है। मौजूदा आन्दोलन का घटनाक्रम और इस से पहले मोर्सी-विरोधी दल के घटकों का व्यवहार ही उनकी वर्गीय स्थितीयां साफ कर देता है। नवंवर 2012 में मोर्सी की तरफ से असीम ताकत हासिल करने के लिए आदेश पास करवाने और नए संविधान को लेकर रोष-प्रदर्शन चालू हो गए थे। आम कामकाजी लोग, विशेष तौर पर, मिस्र के मजदूर मोर्सी सरकार द्वारा बेरोजगारी, महंगाई, गरीबी को दूर करने में नाकाम रहने पर लगातार हडतालें, प्रदर्शन कर रहे थे। जनवरी 2013 में मिस्र में 834 हड़तालें और प्रदर्शन हुए जिनमें से आधे आर्थिक-राजनैतिक मसलों के कारण हुए। इन आर्थिक-राजनैतिक हडतालों-प्रदर्शनों में से दो तिहाई मजदूरों ने किये थे। अप्रैल तक यह गिनती बढती हुई 1,462 हो गई थी और मजदूरों की हड़तालों-प्रदर्शनों की संख्या बढ कर दोगुनी हो गई थी। "तमरुद" आंदोलन की रीढ़ भी असल में मिस्र का मजदूर वर्ग ही है। बुर्जुआ उदारपंथी मुहमेद अल्बारदाई और नस्ववादी ह्मदीन सब्बानी की अगुवाई वाले "क्रांति बचाओ राष्ट्रीय मोर्चे" ने लोगों के रुख की नब्ज पकड़ते हुए इस विरोध को एकजुट करने की कोई कोशिश नहीं की। लोगों का मोर्सी-विरोधी रोष इसी से ही स्पष्ट हो जाता है कि कुछ कारकुनों द्वारा चालू की गयी हस्ताक्षर मुहिम को इतना जबर्दस्त समर्थन मिला। बेशक इस ग्रुप के पास कोई भी विस्तृत ढाँचा नही था। स्वाभाविक है कि अल्बारदाई और सब्बानी जैसे लोग पूँजीवादी ढाँचे के भीतर सत्ता के विरोधी की भूमिका का दोस्ताना मैच खेलने के लिए ही बैठे हैं क्यूँकि पूँजीवादी ढाँचा ऐसे विरोधी अपनी सत्ता के विरोध में किसी भी संभावित जन विद्रोह को, खास तौर पर खतरनाक विद्रोह को दिशाविहीन करने के लिए और लोगों की बेचैनी को ऐसे विरोधियों के "सैफ्टी-वाल्व" के जरिए सुरक्षित ढंग से निकास देने के लिए पैदा करता है और बनाये रखता है। असल में यह पूँजी के हित्तों की हिफाजत करते हैं और अगर हालातों से प्रभावित ऐसे "नकली विरोधी" सरकार बनाते भी हैं तो वो पूँजी के हित्तों की सेवा ही करेंगे।

एक और रास्ता जो मिस्र के मौजूदा हालात पकड़ सकते हैं वह है 1992 के बाद के अल्जीरिया जैसे हालात पैदा हो जाना । 1992 में अल्जीरिया में इस्लामिक फ्रंट पर पाबन्दी लगाने के बाद अल्जीरिया की सेना और इस्लामिक फ्रण्ट के बीच गृहयुद्ध छिड़ गया था जो आगे के छह साल तक जारी रहा और इस के कारण एक लाख लोग मारे गए थे। लेकिन मिस्र की स्थिति अलग दिखाई पड़ रही है। मुस्लिम ब्रदरहुड की सरकार का कार्य लोग देख चुके हैं और इस की साख काफी गिर चुकी है । दूसरा, मिस्र के पूंजीपति वर्ग और साम्राज्य के हित गृहयुद्ध की इजाजत नहीं देते। इस कारण ऐसा होने की संभावना कम ही है, संभव यही लग रहा है कि मोर्सी-समर्थकों के विरोध को मिस्र की सेना कुचल डालेगी।

इस तरह एक बार फिर, मिस्र की घटनाएँ यह साफ कर रही हैं कि पूँजीपति वर्ग की सत्ता का विकल्प मजदूर वर्ग की सत्ता ही है और पूँजीवाद का विकल्प आज भी समाजवाद है। और किसी भी तरीके से पूंजीवाद का विरोध हमें ज़्यादा से ज़्यादा किसी चौराहे पर लाकर ही छोड़ सकता है, रास्ता नहीं दिखा सकता। भविष्य का रास्ता मजदूर वर्ग की विचारधारा मार्क्सवाद और मार्क्सवादी उसूलों पर गढ़ी तथा जन संघर्षों-आंदोलनों में तपी-बढ़ी मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी ही दिखा सकती है। मगर तब भी मिस्र की ताजा घटनाओं का महत्त्व कम नहीं हो जाता, इनसे यह एक वार फिर साबित होता है कि जनता अनंत ऊर्जा का स्रोत है, जनता इतिहास का बहाव मोड़ सकती है, मोड़ती रही है और मोड़ती रहेगी। मिस्र का आगे का रास्ता फिलहाल अँधेरे में डूबा दिखाई दे रहा है, लेकिन यह अकेले मिस्र की होनी नहीं है, तमाम दुनिया में अवाम रास्तों की तलाश कर रहा है। दूसरी तरफ यह भी प्रत्यक्ष है प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ रसातल के अँधेरे कोनों में बैठकर अपने खंजर तीखे कर रही हैं, हिटलर-मुसोलिनी की सन्ताने तमाम दुनियां में पैर पसार रही हैं। बुर्जुआ उदारवाद अपनी नपुंसकता बहुत देर पहले ही दिखा चुका है और नाममात्र की कम्युनिस्ट पार्टियां गद्दारी कर चुकी हैं, लेकिन फिर भी मिस्र में तथा दुनिया के और हिस्सों में मौजूदा पूंजीवादी आर्थिक-सामाजिक ढाँचे के खिलाफ लोगों का फूट रहा आक्रोश, अवाम की अनंत ऊर्जा के टूट रहे बांध, हमारा समय, वर्तमान ऐतिहासिक मोड-बिंदु भविष्य के लिए आशाओं-उम्मीदों से भरे लोगों को सूरज के रास्ते पर चलने का निमंत्रण देता है।

6/8/2013

हमारा प्रचार क्रान्तिकारी है

– लेनिन

('कम्युनिस्ट पार्टी और उसका ढाँचा' पुस्तिका के अंश। इसे 1921 में कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की तीसरी कांग्रेस द्वारा स्वीकृत "कम्युनिस्ट पार्टियों के संगठन पर प्रस्ताव" के रूप में पारित किया गया था।)

20. खुले क्रान्तिकारी संघर्ष से जुड़ा हुआ हमारा मुख्य आम कर्तव्य है क्रान्तिकारी प्रचार (प्रोपेगेण्डा) और आन्दोलन (एजिटेशन) चलाना। यह कार्य और इस का संगठन, अभी भी मुख्यत: जनसभाओं में समय-समय पर दिये जाने वाले भाषणों के ज़रिये पुराने रस्मी ढंग से चलाया जाता है तथा भाषणों और लेखों में अन्तर्निहित क्रान्तिकारी सारतत्व पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।

मज़दूरों के आम हितों और आकांक्षाओं के आधार पर, ख़ासकर उनके आम संघर्षों के आधार पर, कम्युनिस्ट प्रचार और आन्दोलन की कार्रवाई को इस प्रकार चलाना चाहिए कि वह मज़दूरों के अन्दर अपनी जड़ें जमा ले।

याद रखने लायक सबसे अहम नुक्ता यह है कि कम्युनिस्ट प्रचार का चरित्र क्रान्तिकारी होना चाहिए; इसलिए कम्युनिस्ट नारे और ठोस प्रश्नों पर अपने समग्र कम्युनिस्ट रुख़ के बारे में हमें विशेष ध्यान देना चाहिए और ख़ासतौर पर सोचना-विचारना चाहिए।

एक सही रुख़ तक पहुँचने के लिए, न केवल पेशेवर प्रचारकों और आन्दोलनकर्ताओं को, बल्कि सभी दूसरे पार्टी-सदस्यों को भी सावधानीपूर्वक निर्देशित (शिक्षित) किया जाना चाहिए।

कम्युनिस्ट प्रचार और नारों के प्रमुख रूप

21. कम्युनिस्ट प्रचार के प्रधान रूप ये हैं : (क) व्यक्तिगत रूप से किया गया मौखिक प्रचार, (ख) औद्योगिक और राजनीतिक मज़दूर आन्दोलन में भागीदारी और (ग) पार्टी की पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य के वितरण के द्वारा प्रचार। क़ानूनी या ग़ैरक़ानूनी पार्टी के हर सदस्य को प्रचार के इन रूपों में से किसी एक या दूसरे में नियमित रूप से भागीदारी करनी होगी।

व्यक्तिगत प्रचार की कार्रवाई कार्यकर्ताओं के विशेष ग्रुपों द्वारा सुव्यवस्थित ढंग से घर-घर जाकर बातचीत के द्वारा समझाने-बुझाने, सहमत करने की कार्रवाई के रूप में चलाई जानी चाहिए। प्रचार की ऐसी कार्रवाई इस तरह चलाई जानी चाहिए कि पार्टी-प्रभाव के क्षेत्र में एक भी घर छूटने न पाये। अपेक्षाकृत बड़े नगरों में पोस्टरों और पर्चों के वितरण का विशेष रूप से संगठित किया गया प्रचार अभियान आम तौर पर सन्तोषजनक परिणाम देता है। इसके अतिरिक्त वर्कशापों के अन्दर साहित्य के वितरण के साथ-साथ फ्रैक्शनों को नियमित रूप से व्यक्तिगत आन्दोलनात्मक प्रचार (एजिटेशन) की कार्रवाई चलानी चाहिए।

जिन देशों में आबादी में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक भी शामिल हैं, वहाँ इन अल्पसंख्यकों के सर्वहारा हिस्सों में प्रचार और आन्दोलन चलाने की दिशा में आवश्यक ध्यान देना पार्टी का कर्तव्य है। ज़ाहिर है कि प्रचार और आन्दोलन की यह कार्रवाई उक्त राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों की भाषाओं में ही चलायी जानी चाहिए जिसके लिए पार्टी को आवश्यक विशेष निकायों का निर्माण करना चाहिए।

22. उन पूँजीवादी देशों में जहाँ सर्वहारा वर्ग का विशाल बहुमत क्रान्तिकारी चेतना के स्तर पर अभी नहीं पहुँच पाया है, कम्युनिस्ट आन्दोलनकारियों को इन पिछड़े हुए मज़दूरों की चेतना को ध्यान में रखते हुए और क्रान्तिकारी क़तारों में इनका प्रवेश आसान बनाने के लिए लगातार कम्युनिस्ट प्रचार के नये रूपों की खोज करते रहना चाहिए। अपने नारों के ज़रिये कम्युनिस्ट प्रचार को उन प्रस्फुटित होती हुई, अचेतन, अपूर्ण, ढुलमुल और अर्द्धपूँजीवादी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों को उभारना और सामने लाना चाहिए जो मज़दूरों के दिमागों में पूँजीवादी परम्पराओं और अवधारणओं के ऊपर हावी होने के लिए संघर्ष कर रही होती हैं।

साथ ही, कम्युनिस्ट प्रचार को सर्वहारा जनसमुदाय की सीमित एवं अस्पष्ट माँगों और आकांक्षाओं तक ही सीमित रहकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इन माँगों और आकांक्षाओं में क्रान्तिकारी भ्रूण मौजूद रहते हैं और ये सर्वहारा वर्ग को कम्युनिस्ट प्रचार के प्रभाव के अन्तर्गत लाने का साधन होती हैं।

मज़दूर वर्ग के रोज़मर्रा के संघर्षों का नेतृत्व करो

23. सर्वहारा जनसमुदाय के बीच कम्युनिस्ट आन्दोलन (या आन्दोलनात्मक प्रचार) का काम इस प्रकार चलाया जाना चाहिए कि संघर्षरत सर्वहारा हमारे कम्युनिस्ट संगठन को साहसी, बुद्धिमान, ऊर्जस्वी और यहाँ तक कि अपने ख़ुद के मज़दूर आन्दोलन के हर हमेशा

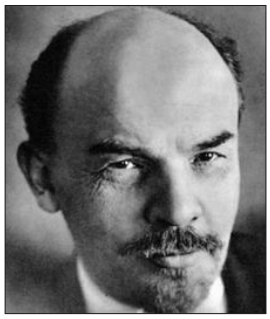

वफादार नेता के रूप में जाने।

इसे हासिल करने के लिए कम्युनिस्टों को मज़दूरों के सभी प्रारम्भिक संघर्षों और आन्दोलनों में भाग लेना चाहिए तथा काम के घण्टों, काम की परिस्थितियों, मज़दूरी आदि को लेकर उनके और पूँजीपतियों के बीच होने वाले सभी टकरावों में मज़दूरों के हितों की हिफाजत करनी चाहिए। कम्युनिस्टों को मज़दूर वर्ग के जीवन के ठोस प्रश्नों पर भी ध्यान देना चाहिए। उन्हें इन प्रश्नों की सही समझदारी हासिल करने में मज़दूरों की सहायता करनी चाहिए। उन्हें मज़दूरों का ध्यान सर्वाधिक स्पष्ट अन्यायों की ओर आकर्षित करना चाहिए तथा अपनी माँगों को व्यावहारिक तथा सटीक रूप से सूत्रबद्ध करने में उनकी सहायता करनी चाहिए। इत तरह वे मज़दूर वर्ग के भीतर एकजुटता की स्पिरिट और देश के सभी मज़दूरों के भीतर एक एकीकृत मज़दूर वर्ग के रूप में, जो कि सर्वहारा की विश्व सेना का एक हिस्सा है, सामुदायिक हितों की चेतना जागृत कर पायेंगे।

सिर्फ़ इस प्रकार के रोज़मर्रा के प्रारंभिक कर्तव्यों की पूर्ति करके तथा सर्वहारा के सभी संघर्षों में भाग लेकर ही कम्युनिस्ट पार्टी एक सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में विकसित हो सकती है। सिर्फ़ इस प्रकार के तरीक़ों को अपनाकर ही वह घिसे-पिटे, तथाकथित शुद्ध समाजवादी प्रचार करने वाले, सिर्फ़ नये सदस्य भर्ती करने वाले तथा सुधारों और सभी संसदीय सम्भावनाओं का इस्तेमाल कर पाने की सम्भावनाओं या असम्भावनाओं की बातें करते रहने वाले प्रचारकों से अपने को अलग कर सकेगी। शोषकों के विरुद्ध चलने वाले शोषितों के रोज़मर्रा के संघर्षों और विवादों में पार्टी-सदस्यों का आत्मत्यागपूर्ण और चेतन सहयोग न केवल सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय के लिए बल्कि उससे भी अधिक, इस अधिनायकत्व को क़ायम रखने के लिए नितान्त आवश्यक है। पूँजीवाद के हमलों के ख़िलाफ़ छोटे-छोटे संघर्षों में मेहनतकश अवाम का नेतृत्व करके ही कम्युनिस्ट पार्टी पूँजीपति वर्ग के ऊपर प्रभुत्व स्थापित करने के संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का सुव्यवस्थित नेतृत्व कर पाने की क्षमता प्राप्त करते हुए मेहनतकश जनसमुदाय का हिरावल दस्ता बन सकेगी।

प्रत्येक संघर्ष की अगली क़तार में

24. ख़ासतौर पर हड़तालों, तालाबन्दियों और मज़दूरों की बड़े पैमाने पर बर्खास्तगी को लेकर होने वाले मज़दूर आन्दोलनों में भागीदारी के लिए, कम्युनिस्टों को पूरी ताक़त झोंककर लामबन्द होना चाहिए।

मज़दूरों द्वारा काम करने की परिस्थितियों में मामूली सुधारों की माँग को लेकर चलाये जाने वाले आन्दोलनों के प्रति तिरस्कार का रुख़ अपनाना या कम्युनिस्ट कार्यक्रम और अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रान्तिकारी संघर्ष की आवश्यकता के नाम पर उनके प्रति निष्क्रियता का रुख़ अपनाना कम्युनिस्टों के लिए भारी भूल होगी। मज़दूर अपनी जिन माँगों को लेकर पूँजीपतियों से लड़ने के लिए तैयार और रजामन्द हों, वे चाहे कितनी भी छोटी या मामूली क्यों न हों, कम्युनिस्टों को संघर्ष में शामिल न होने के लिए उन माँगों के छोटी होने का बहाना नहीं बनाना चाहिए। हमारी आन्दोलनात्मक गतिविधियों के ख़िलाफ़ इस तरह के इल्जाम की गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए कि हम मज़दूरों को मूर्खतापूर्ण हड़तालों या अन्य नासमझी भरी कार्रवाइयों के लिए उभाड़ते और उकसाते हैं। संघर्षरत जनता के बीच कम्युनिस्टों को यह प्रतिष्ठा अर्जित करने की चेष्टा करनी चाहिए कि वे हिम्मत वाले और संघर्षों में कारगर भूमिका निभाने वाले लोग हैं।

आंशिक माँगों के लिए लड़ना सीखो

25. रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के कुछ सबसे मामूली सवालों पर ट्रेड यूनियन आन्दोलन के भीतर काम करने वाले कम्युनिस्ट सेलों (या फ्रैक्शनों) ने व्यवहार में अपने आप को लगभग असहाय सिद्ध किया है। कम्युनिज़्म के सामान्य सिद्धान्तों के बारे में प्रवचन करते जाना और उसके बाद जब ठोस सवाल सामने आयें तो साधारण सिण्डिकलिस्टों (संघाधिपत्यवादियों) के नकारात्मक दृष्टिकोण के चक्कर में फँस जाना आसान तो है पर उपयोगी नहीं है। यह व्यवहार केवल पीले आम्स्टर्डम इण्टरनेशनल• के हाथों में खेलने के बराबर है।

(•"आम्स्टर्डम इण्टरनेशनल" दूसरे इण्टरनेशनल का ही एक और नाम है। यह ग़द्दार कार्ल काउत्स्की व अन्य की सामाजिक जनवाद की विचारधारा को मानने वाली यूरोपीय पार्टियों का अन्तरराष्ट्रीय संघ था जिसने प्रथम महायुद्ध के दौरान विश्व सर्वहारा क्रान्ति के लक्ष्य के साथ ग़द्दारी करके 'पितृभूमि की रक्षा' का अन्धराष्ट्रवादी नारा दिया था और साथ ही राज्य और क्रान्ति विषयक मार्क्सवाद की बुनियादी शिक्षाओं और सर्वहारा अन्तरराष्ट्रीयतावाद का परित्याग करके मध्यमार्गी या दक्षिणपन्थी अवसरवादी या संशोधनवादी अवस्थिति अपना ली थी। ट्रेड यूनियन आन्दोलन में ये कुलीन मज़दूरों का व मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे और इनकी यूनियनें महज अर्थवादी संघर्ष और सुधार-समझौते की राजनीति करके सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी चेतना और राजनीतिक संघर्ष की धार भोथरी करके पूँजीपति वर्ग की सेवा किया करती थीं और आज भी कर रही हैं। भारत में भाँति-भाँति के समाजवादी इन्हीं के वारिस हैं। ख्रुश्चेव से लेकर देङ सियाओ-पिङ मार्का "मार्क्सवाद" को मानने वाली भारत की चुनावबाज संशोधनवादी कम्युनिस्ट पार्टियाँ भी आज दूसरे इण्टरनेशनल की पार्टियों के ही नक्शेक़दम पर चल रही हैं और उनके यूनियन नेताओं का आचरण भी आम्स्टर्डमपन्थी नेताओं जैसा ही है। कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल के 'लाल' सर्वहारा चरित्र के समान्तर दूसरे इण्टरनेशनल के पूँजीवादी चरित्र को नंगा करने के लिए लेनिन उसे "पीला इण्टरनेशनल" भी कहा करते थे। – सं.)

इसके विपरीत कम्युनिस्टों को अपने व्यवहार में प्रत्येक प्रश्न के व्यावहारिक पहलू के सावधानीपूर्वक किये गये अध्ययन से ही निर्देशित होना चाहिए।

मिसाल के तौर पर, सभी कामकाजू समझौतों (वेतन और काम के हालात से सम्बन्धित) का सैद्धान्तिक रूप से या उसूली तौर पर विरोध करके अपने को सन्तुष्ट कर लेने के बजाय उन्हें आम्स्टर्डम इण्टरनेशनल के नेताओं की सिफ़ारिश के मुताबिक हुए विशेष प्रकार के समझौतों (वेतन सम्बन्धी समझौतों) को लेकर होने वाले संघर्ष का नेतृत्व करना चाहिए। बेशक यह ज़रूरी है कि सर्वहारा की क्रान्तिकारी तत्परता

(पेज 2 पर जारी)

फ़ाँसी के तख़्ते से

जूलियस फ़्यूचिक

आज पहली मई, सन 1943 है। इस विराम में मुझे लिखने का अवसर मिल गया है। फिर एक बार क्षण भर के लिए कम्युनिस्ट सम्पादक बनकर नयी दुनिया की रण-शक्ति की, मई दिवस की परेड की कहानी लिख सकना – कितने भाग्य की बात है!

लहराते हुए झण्डों की बात सुनने की आशा मत कीजिये, वैसी कोई चीज़ नहीं है। न मैं आपको किसी रोमांचकारी संघर्ष का हाल सुना सकता हूँ, जो लोगों को बहुत अच्छा लगता है। आज उससे बहुत ही साधारण चीज़ें थीं। दूसरे वर्षों में प्राग की सड़कों पर पहली मई को जुलूस में मार्च करने वालों की गरजती हुई लहरें उमड़ा करती थीं; आज वे नहीं हैं। न आज लाखों इंसानों का वह अपूर्व लहराता हुआ सागर ही है जो मैंने मास्को के लाल चौक में उमड़ता देखा है। यहाँ न लाखों हैं, न सैकड़ों; सिर्फ मुट्ठी-भर साथी हैं। पर तो भी ऐसा लगता है कि यह कम महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि यहाँ पर उस नयी शक्ति का दर्शन हो रहा है जो जलती हुई, दहकती हुई भट्ठी में से गुजर रही है, पर जो राख होकर नहीं, बल्कि फौलाद होकर निकलती है। यह जंग के मैदान की खन्दकों के अन्दर होने वाला प्रदर्शन है, ऐसी खन्दकें जहाँ हम भूरी वर्दियाँ पहनते हैं।

यह परीक्षा ऐसी छोटी-छोटी चीज़ों में होती है कि आप लोग, जो जंग की भट्ठी में से नहीं गुजरे हैं, सिर्फ पढ़कर ही शायद उसे न समझ सकें। या शायद आप समझ जायें। मेरा विश्वास कीजिये, शक्ति का यहीं जन्म होता है।

सबेरे ही अभिवादन के रूप में हमारे बगलवाली कोठरी के साथी ने बीथोवेन के संगीत की दो पंक्तियों की लय दीवार पर थपथपायी। आज उसमें अधिक जोर, अधिक उत्साह है। आज दीवार ऊँचे स्वर से बोलती है।

हम अपने अच्छे से अच्छे कपड़े पहन लेते हैं। दूसरी सब कोठरियों में भी यही होता है।

हमारा शानदार कलेवा होता है। कोठरियों के खुले दरवाज़े के सामने नम्बरदार काली कॉफी, रोटी और पानी लिये हुए परेड कर रहे हैं। कॉमरेड स्कोरेपा अपने मई दिवस के अभिवादन के रूप में दो के बजाय तीन मीठी टिकिया दे जाता है। यह एक सावधान व्यक्ति का अभिवादन है जो बहुत साधारण कामों के द्वारा अपनी भावनाओं को प्रकट करना जानता है। टिकियों के नीचे एक दूसरे की उँगलियाँ परस्पर छू जाती हैं और हलका-सा दबाव हम दोनों अनुभव करते हैं। बोलने का साहस नहीं होता – वे हमारी आँखों में प्रकट होने वाले भाव तक को देखते रहते हैं। पर गूंगे अपनी उँगलियों से ही बहुत अच्छी तरह बातें कर सकते हैं।

हमारी खिड़की के नीचे कैदी स्त्रियाँ अपनी कसरत के लिए दौड़कर आ रही हैं। मैं मेज़ पर खड़ा होकर सींखचों में से नीचे देखने लगता हूँ। शायद वे लोग ऊपर देखें। वे मुझे देख लेती हैं और अभिवादन के लिए बँधी हुई मुट्ठियाँ तान लेती हैं। एक बार और। नीचे आँगन में बड़ी हलचल है – दूसरे दिनों की अपेक्षा तो आज वहाँ सचमुच ज़्यादा खुशी मालूम होती है। सन्तरी देख नहीं रहा, या शायद देखना चाहता नहीं। यह भी मई दिवस की परेड का ही एक अंग है।

फिर हमारा कसरत का वक्त आता है, आज मुझे ही कसरत करानी है। साथियों, आज पहली मई है, आज किसी नयी चीज़ से शुरुआत करनी चाहिए, सन्तरी चाहे देख रहा हो या नहीं। पहली कसरत है लुहार के भारी हथौड़े का घुमाना – एक, दो, एक, दो। दूसरी है अनाज काटना। हथौड़ा और हँसिया – लोग समझने लगते हैं। सब लोगों के चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड़ जाती है और वे और भी जोश में कसरत करने लगते हैं। साथियो, यह हमारा मई दिवस का प्रदर्शन है; यह मूक अभिनय हमारी मई दिवस की प्रतिज्ञा है कि हम दृढ़ रहेंगे – हम, जो मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं।

सब कोठरियों में लौट आये हैं। नौ बजे। क्रेमलिन के घण्टाघर में दस घण्टे बजे हैं और लाल चौक में परेड शुरू हो जाती है। आओ पापा, आओ, वे लोग इण्टरनेशनल गा रहे हैं। इण्टरनेशनल सारी दुनिया में गूँज रहा है; हमारी कोठरी में भी उसे गूँजना चाहिए। हम भी इण्टरनेशनल गाने लगते हैं और फिर एक के बाद एक क्रान्तिकारी गीतों का ताँता लग जाता है। हम लोग अकेलापन नहीं अनुभव करना चाहते – अकेले हम हैं भी नहीं। हम उन लोगों में से हैं जो बाहर दुनिया में स्वाधीनतापूर्वक गाने की हिम्मत रखते हैं। वे लड़ाई में जुटे हुए हैं, ठीक वैसे ही जैसे हम लोग....

उन घृणित दीवारों के पीछे
जेल में बन्द साथियो,
तुम हमारे ही साथ हो
तुम हमारे ही साथ हो,
चाहे आज तुम हमारे साथ
कदम मिलाकर न चल सकते हो।
हाँ, हम लोग तुम्हारे ही साथ हैं।

कोठरी नम्बर 267 में हम लोग सोच रहे थे कि हमारे 1943 के मई दिवस समारोह के लिए यही अन्त बहुत उपयुक्त है। पर समारोह यहीं खत्म नहीं हुआ। स्त्रियों के बरामदे की नम्बरदारिन बाहर आँगन में "लाल सेना का मार्च" नामक गीत की धुन पर सीटी बजाती हुई टहल रही है। फिर वह छापेमारों का गीत तथा दूसरे सोवियत गीत सीटी पर बजाती है। इस तरह वह पुरुषों की कोठरियों के रहने वालों का साहस बढ़ा रही है। और चेक पुलिस की वर्दी पहने हुए जो व्यक्ति मेरे लिए काग़ज़ और पेंसिल लाया था, वह मेरे दरवाज़े के बाहर खड़ा पहरा दे रहा है ताकि लिखते वक्त कोई अचानक ही न आ जाय। और वह दूसरा चेक सन्तरी भी है जिसने मुझसे यह लिखना शुरू कराया था और जो लिखे काग़ज़ों को ले जाया करता है। ये काग़ज़ तब तक छिपे रहेंगे जब तक उन्हें छापने का ठीक मौका न आ जाये। इस काग़ज़ के टुकड़े की कीमत उसे अपने सिर से चुकानी पड़ सकती है। पर वह सींखचों के पीछे के आज तथा स्वाधीन कल के बीच काग़ज़ का पुल बनाने के लिए अपनी जान जोखिम में डालने को तैयार है। ये सब एक ही लड़ाई लड़ रहे हैं; चाहे जहाँ हों, हाथ में चाहे जो अस्त्र हों, पर वे सब हिम्मत के साथ लड़े जा रहे हैं। वे इतनी सहजता के साथ लड़ रहे हैं, उनमें दिखावे का और शोक का इतना अधिक अभाव है कि आपको ऐसा कभी नहीं लगेगा कि यह युद्ध मृत्यु से पहले नहीं ख़त्म हो सकता और इसमें उनके प्राण एक कच्चे डोरे से लटके हुए हैं।

मई दिवस पर क्रान्ति के सिपाहियों को परेड करते हुए आपने दसियों-बीसियों बार देखा होगा, वह कितनी शानदार होती थी। पर इस सेना की असली ताक़त को आप केवल युद्ध में ही देख सकते हैं, और तभी आप यह अनुभव करेंगे कि यह सेना अजेय है। तभी आपको ज्ञान होगा कि आप जितना सोचते थे, मृत्यु उससे कहीं अधिक सहज है, और वीर पुरुष के सिर के चारों ओर किसी दैवी आभा का घेरा नहीं हुआ करता। पर युद्ध उससे कहीं ज़्यादा निर्मम है जितना आप समझते थे, और उसमें अन्त तक टिके रहने और विजय प्राप्त करने के लिए अपार शक्ति की ज़रूरत होती है। आप इस सेना को आगे बढ़ते तो देखते हैं, पर हमेशा यह नहीं समझ पाते कि उसकी ताक़त कितनी है। उसके प्रहार इतने सहज और तर्क-संगत होते हैं।

पर आज यह बात आपकी समझ में आ जाती है।

1943 के मई दिवस की परेड के अवसर पर।

पहली मई, 1943 ने मेरी इस कहानी के प्रवाह को क्षण भर के लिए रोक दिया। पर यह उचित ही है। त्योहार के दिनों में आदमी और तरह से सोचता है, और आज मैं जिस हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ, वह उसके बारे में मेरी स्मृति को तोड़-मोड़ सकता है।

पर पेचेक बिल्डिंग का "सिनेमा" कतई आनन्ददायक चीज़ न थी। वह तो यंत्रणा गृह का द्वार है जहाँ से आप दूसरों की चीख़ें और आहें सुनते हैं और सोचते रहते हैं कि आप पर क्या बीतने वाली है। वहाँ आप मज़बूत और स्वस्थ लोगों को अन्दर आते देखते हैं, और दो या तीन घण्टे बाद वे "पेशी" से पंगु होकर और टूटकर लौट आते हैं। प्रवेश करते समय एक सबल कण्ठ आपको "नमस्कार" कहता है – और लौटता है कष्ट से घुटा हुआ दम लेकर, टूटा हुआ, बुखार से जलता हुआ। कभी-कभी तो इससे भी बुरा दृश्य दिखाई पड़ता है। आप एक व्यक्ति को सीधी और चमकदार आँखें लेकर अन्दर जाते देखते हैं; पर जब वह लौटता है तो आपकी ओर नज़र उठाकर देखने का साहस उसे नहीं होता। वहाँ उस परीक्षा-गृह में दुर्बलता के एक क्षण ने उसे दबोच लिया – अनिश्चय और भय तथा अपने-आपको बचाने की प्रबल इच्छा के बस केवल एक क्षण ने। इसका अर्थ है कि कल वे नये बलि-पशुओं को पकड़ लायेंगे, जिन्हें नये सिरे से इन सारी यंत्रणाओं से गुजरना होगा, वे उन लोगों को पकड़ लायेंगे जिनका भेद इस साथी ने दुश्मन के आगे खोल दिया है।

जो आदमी यहाँ हिम्मत हार बैठता है और अपनी आत्मा को खो देता है, उसकी सूरत उस आदमी की अपेक्षा कहीं अधिक बुरी होती है जिसका शरीर यहाँ पंगु बना दिया गया है। यदि आपकी आँखों को यहाँ विचरने वाली मृत्यु पोंछ चुकी है, यदि आपकी इन्द्रियों में पुनर्जन्म फिर प्राणों का संचार कर चुका है, तो शब्दों के बिना भी आपको यह पहचानने में देर नहीं लगती कि कौन डगमगा चुका है, किसने दूसरे के साथ विश्वासघात किया है; और आप झट से उसे पहचान लेते हैं जिसने क्षण भर के लिए भी इस विचार को मन में आश्रय दिया है कि घुटने टेक देना और अपने सबसे कम महत्वपूर्ण सहकर्मियों का पता बता देना बेहतर है। जो लोग दुर्बल पड़ जाते हैं, उनकी हालत दयनीय है। अपनी वह ज़िन्दगी वे किस तरह बितायेंगे जिसे बचाने के लिए उन्होंने अपने एक साथी की ज़िन्दगी बेच डाली है।

जब मैं पहली बार "सिनेमा" में जाकर बैठा, तब यह विचार चाहे मेरे मन में न आया हो, पर बाद में यह बहुत बार आता रहा। और उस दिन सबेरे तो यह विचार एक दूसरी ही परिस्थिति में मेरे मन में उदय हुआ जब मैं उस कमरे में बैठा था जो समझ का अथाह भण्डार है; नम्बर 400 में।

"सिनेमा" में मैं ज़्यादा देर नहीं बैठा होऊँगा – शायद एक घण्टा, या शायद डेढ़ घण्टा – जब पीछे से किसी ने मेरा नाम पुकारा। दो चेक भाषा बोलने वालों ने, जो फौजी नहीं मालूम पड़ते थे, मुझे अपने साथ लिया, बिजली के लिफ्ट पर चढ़ाया और चौथी मंज़िल पर ले जाकर उतार लिया। फिर वे मुझे एक कमरे में ले गये जिसके दरवाज़े पर नम्बर 400 लिखा था।

पहले तो बस मैं अकेला ही दीवार के पास की एक अकेली कुरसी पर बैठा रहा। मैं उस व्यक्ति जैसी अजीब भावनाओं से चारों तरफ देख रहा था जो यह सोचता हो कि जो क्षण इस समय बीत रहा है, उसे वह पहले भी कभी अनुभव कर चुका है। क्या मैं यहाँ पहले आया हूँ? नहीं तो, कभी नहीं। पर यह सब कुछ तो जाना हुआ सा मालूम पड़ता है। मैं इस कमरे को जानता हूँ, इसके बारे में एक निष्ठुर बुखार जैसी हालत का सपना देख चुका हूँ। सपने ने इस कमरे के रूप को विकृत करके बहुत ही घृणित बना दिया था – पर ऐसा नहीं कि पहचाना ही न जा सके। इस समय तो यह कमरा आकर्षक लग रहा है, धूप से और साफ रंगों से भरा हुआ। बड़ी-बड़ी खिड़कियों और उनके हलके परदों में से ताइन का गिरजाघर, लेतना का हरा-भरा बागीचा, और महल साफ दीख रहे हैं। मेरे सपने में इस कमरे में खिड़कियाँ नहीं थीं, उसमें अँधेरा था और उसका रंग मटमैला पीला जैसा था जिसके कारण लोग छायाओं जैसे लग उठते थे। हाँ, यहाँ लोग भी थे। अब तो यह खाली है और एक के पीछे एक पास-पास रखी हुई छह बेंचें ऐसी लगती हैं मानो चमकीले पीले रंग के फूलों वाले पौधों की सुन्दर क्यारी हो। सपने में यह कमरा लोगों से भरा हुआ था, जो बेंचों पर पास-पास बैठे हुए थे, जिनके चेहरे निस्तेज थे और उन पर

(पेज 15 पर जारी)

फ़ाँसी के तख़्ते से

(पेज 14 से आगे)

खून उतर आया था। वहाँ दरवाज़े के बिल्कुल पास काम करने के नीले कपड़े पहले एक आदमी खड़ा था जिसकी आँखें संत्रस्त थीं, जो कुछ पीने के लिए, पीते जाने के लिए बेचैन था। फिर वह नाटक के गिरते हुए परदे की भाँति फर्श पर गिर पड़ा था...

हाँ, ठीक ऐसा ही था, पर अब मैं समझ रहा हूँ कि वह सपना नहीं था। वह बेहोशी का सपना सचमुच एक घटना थी।

वह मेरी गिरफ़्तारी की रात की और मेरी पहली पेशी की बात है। वे सुस्ताने के लिए या किसी और से निपटने के लिए मुझे यहाँ तीन बार लाये थे – या शायद दस बार, मैं क्या जानता हूँ। मैं नंगे पैर था और मुझे याद है कि फर्श के टाइल मेरे सूजे हुए पैरों को कितने सुखद और शीतल लगते थे।

उस रात ये बेंचें जुंकर्स कारखाने के मज़दूरों से भरी हुई थीं। उन सबको गेस्टापो ने उसी दिन पकड़ा था। दरवाज़े के पास नीले कपड़ों वाला आदमी जुंकर्स की पार्टी-सेल का कॉमरेड बार्टन था, जो अप्रत्यक्ष रूप से मेरी गिरफ़्तारी का कारण भी था। पर मेरे हश्र के लिए कहीं किसी और को ज़िम्मेदार न ठहरा दिया जाय, इसलिये मैं यह ज़रूर कहना चाहता हूँ कि मैं किसी की कायरता या विश्वासघात के कारण नहीं पकड़ा गया, बल्कि सिर्फ लापरवाही और दुर्भाग्य के कारण गिरफ़्तार हुआ। कॉमरेड बार्टन प्रतिरोध आन्दोलन के बड़े नेताओं से अपनी सेल का सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके मित्र कॉमरेड ज़ेलीनेक ने गुप्त कार्य के नियमों को तोड़कर उनके लिए सीधे ऊपर से सम्पर्क स्थापित करने का वादा कर दिया। मुझसे इस बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा। यह पहली भूल हुई। दूसरी भूल यह हुई कि कॉमरेड बार्टन का सम्पर्क द्वोराक नाम के एक आदमी से थे जो खुफिया निकला। उसे ज़ेलीनेक का नाम मालूम हो गया। इस तरह ज़ेलीनेक परिवार गेस्टापो के चंगुल में पड़ गया, किसी बड़ी ज़िम्मेदारी को पूरा न करने के कारण नहीं – उसे तो वे लोग दो बरस से बहुत वफ़ादारी के साथ पूरा कर रहे थे – बल्कि उस छोटी सी सहायता के कारण, जो गुप्त काम के नियमों के प्रतिकूल थी। और यह संयोग की ही बात थी कि पेचेक बिल्डिंगवालों ने उसी शाम को ज़ेलीनेक दम्पत्ति को गिरफ़्तार करने का इरादा किया जिस दिन मैं उनसे मिलने गया। और उस दिन इतनी बड़ी संख्या में भी वे वहाँ अकस्मात ही आ गये थे। योजना उस तरह की नहीं थी। ज़ेलीनेक दम्पति को अगले दिन गिरफ़्तार करने की बात थी। पर जुंकर्स सेल के सदस्यों को गिरफ़्तार कर लेने की सफलता के बाद गेस्टापो का दस्ता ज़ेलीनेक के यहाँ इतने उत्साह के साथ सिर्फ मजे के लिए जा पहुँचा था। उनके आ पहुँचने का हमें जितना आश्चर्य हुआ था, उससे कम मुझे वहाँ पाकर उन्हें भी नहीं हुआ था। पहले तो वे यह भी नहीं पहचान पाये कि कौन उनके हाथ लग गया है। और शायद उन्हें कभी पता न चलता अगर उसी के साथ-साथ उन्हें...।

पर विचारों का यह क्रम बीच में ही टूट गया और नम्बर 400 में फिर से उसे जारी करने का मौका बहुत समय बाद मिला। इस समय तक मैं अकेला न रह गया था, बेंचें भर गयी थीं और आश्चर्य से चकित कर देने वाले वे घण्टे जैसे-जैसे तेजी से बीतते गये, वैसे-वैसे लोगों की एक पंक्ति चारों तरफ दीवार के सहारे खड़ी होती गयी। कुछ तो ऐसी अजीब आश्चर्यजनक बातें हुईं कि मैं उन्हें समझ ही न सका। कुछ ऐसी नीचतापूर्ण बातें थीं जिन्हें मैं बहुत अच्छी तरह समझ गया।

पहले आश्चर्य की बात न तो अजीब थी, न दृष्टतापूर्ण। वह बहुत छोटी और महत्वहीन बात थी, पर तो भी मैं उसे कभी भूल नहीं सकता। गेस्टापो का जो एजेंट मेरी निगरानी कर रहा था – मुझे याद है कि यह वही आदमी था जिसने गिरफ़्तारी के बाद मेरी सारी जेबें उलट-पलट कर देखीं थीं – उसने एक जलती हुई सिगरेट का आधा टुकड़ा मेरी ओर फेंक दिया। वह तीन सप्ताह के भीतर मुझे मिलने वाली पहली सिगरेट थी, पृथ्वी पर फिर से लौट आने वाले व्यक्ति के लिए वह पहली सिगरेट थी। मैं उठा लूँ? या वह सोचेगा कि उसने मुझे एक सिगरेट से खरीद लिया? पर सिगरेट के साथ आने वाली उसकी नज़र एकदम बेबाक थी। वह साफ बताती थी कि उसे किसी को खरीदने में दिलचस्पी नहीं है। तो भी मैं उस सिगरेट का अन्त तक न उठा सका। हाल के पैदा हुए बच्चे सिगरेट पीने वाले नहीं हुआ करते।

दूसरा आश्चर्य – चार व्यक्ति नात्सियों की तरह पैर पटकते और खट-खट करते हुए कमरे में प्रवेश करते हैं और वहाँ मौजूद लोगों को और मुझे भी चेक भाषा में नमस्कार करते हैं। वे आकर मेज के पीछे बैठ जाते हैं, अपने काग़ज़ निकाल कर सामने रखते हैं, और फिर बहुत ही आराम के साथ सिगरेटें जलाते हैं मानो वे अफ़सर हों। पर मैं इन्हें जानता हूँ, मैं उनमें से कम से कम तीन को तो जानता ही हूँ। तो क्या यह मुमकिन है कि वे गेस्टापो की नौकरी में हैं? होंगे ही – पर क्या ये तीनों भी? अरे, यह तो तेरिंग्ल है या कहिये रेनेक, जिस नाम से हम लोग उसे पुकारते थे। वह तो यूनियन का और पार्टी का बहुत अर्से तक सेक्रेटरी रहा है। स्वभाव से वह कुछ अनियंत्रित ज़रूर था, पर था तो वफ़ादार। यह तो असम्भव है! और वह है आँका बाइकोवा, अब भी कितनी सीधी और कितनी सुन्दर, हालाँकि उसके बाल पूरी तरह सफेद हो चुके हैं। वह बड़ी पक्की और मज़बूत लड़ने वाली औरत थी! नहीं, यह असम्भव है। और वह रहा वाशेक रेजेक, उत्तरी बोहेमिया की खानों का राज और पार्टी की जिला कमिटी का सचिव – निश्चय ही वही है; मैं उसे जानता हूँ। उत्तरी इलाके के उन तमाम संघर्षों को पार कर चुकने के बाद भी, जिनका हमने मिलकर सामना किया था, कोई चीज़ कैसे उसकी कमर तोड़ सकती है? नहीं, यह असम्भव है। लेकिन फिर वे यहाँ क्या कर रहे हैं? वे क्या चाहते हैं?

मुझे इन प्रश्नों का उत्तर अभी मिला भी न था कि दूसरे लोग आ पहुँचे। मिरका, ज़ेलीनेक और फीड दम्पतियों को वे वहाँ ले आये। हाँ, मैं जानता हूँ, ये लोग तो मेरे साथ ही गिरफ़्तार हुए थे। लेकिन, वह पावेल क्रोपाचेक! वह कला का इतिहासकार यहाँ क्यों है, जो बुद्धिजीवियों के बीच काम करने में माइरेक की मदद करता था? माइरेक और मेरे सिवा उसके बारे में और कौन जानता था? और वह कुचले हुए चेहरे वाला लम्बा नौजवान क्यों यह बहाना बनाने की कोशिश कर रहा है कि हम एक-दूसरे को नहीं जानते। मैं सचमुच उसे नहीं जानता। पर वह कौन हो सकता है? अरे, यह तो श्ताइच है। श्ताइच? डाक्टर ज़्देनेक श्ताइच? बाप रे, इसका तो मतलब है कि उन्हें डाक्टरों की टुकड़ी का भी पता चल गया। पर उनके बारे में माइरेक और मेरे सिवा और कौन जानता था? और कोठरी में मुझे पीटते वक्त उस दिन वे बुद्धिजीवियों के दल के बारे में क्यों पूछ रहे थे? बुद्धिजीवियों के बीच मेरे काम करने का उन्हें पता कैसे चल गया। उस बारे में माइरेक और मेरे सिवा और किसी को क्या मालूम था?

इन सवालों का जवाब पाना कठिन नहीं था, लेकिन यह बड़ा भारी सदमा था – ज़रूर माइरेक ने ही बताया होगा; उसी ने हम लोगों का भेद खोल दिया है। क्षण भर के लिए मैंने आशा बाँधी कि उसने सब कुछ नहीं बताया है। पर वे फौरन ही क़ैदियों का एक और झुण्ड ले आये। तब मैंने देखा कि उसने क्या कर डाला है।

चेक बुद्धिजीवियों की राष्ट्रीय क्रान्तिकारी कमिटी में जिन-जिन लोगों को गिना जाता था, वे सब यहाँ मौजूद थे : लेखक व्लादिमीर वांचुरा; प्रोफेसर फेल्बर और उनका पुत्र; बेदरिच वाक्लावेक, ऐसे बदले भेष में कि पहचाने ही न जा सके; बोजेना पुल्पानोवा; जिन्द्रिच एल्ब्ल; मूर्तिकार द्वोराक। बुद्धिजीवियों के बीच काम के बारे में माइरेक ने ज़रूर सब कुछ बता दिया होगा।

पेचेक बिल्डिंग का पहला अनुभव मेरे लिए कुछ आसान न था। लेकिन यह सदमा सबसे भारी था। मैं मृत्यु की आशा करता था, विश्वासघात की नहीं। मैंने माइरेक के बारे में अधिक से अधिक रियायत से सोचने की कोशिश की, उसके कुकर्म के अच्छे से अच्छे कारण सोचने का प्रयत्न किया और आशा की कि कम से कम अमुक बातें तो माइरेक ने नहीं ही बतायी होंगी, लेकिन इसके सिवा मुझे और कोई शब्द नहीं मिला कि उसने विश्वासघात किया हैं यह डगमगाने लगना या दुर्बलता दिखाना नहीं था, न यह जानलेवा पाशविक अत्याचार के कारण अपनी सुध-बुध खो बैठना था जिसे माफ किया जा सके। अब मेरी समझ में आया कि किस तरह उन्हें पहली ही रात को मेरा नाम मालूम हो गया था। अब मैं समझा कि एनी जिरास्कोवा यहाँ कैसे पहुँची। एक-दो बार मैं उसके घर पर माइरेक से मिला था। अब मेरी समझ में आया कि क्रोपाचेक और डाक्टर श्ताइच यहाँ क्यों मौजूद हैं।

उसके बाद मुझे क़रीब-क़रीब रोज़ नम्बर 400 में ले जाया जाता था और रोज़ मुझे नयी बातें मालूम होती थीं। सारी चीज़ बड़ी दर्दनाक और भयानक थी। वह बड़े जीवट का आदमी था। स्पेन के मोर्चे पर लड़ने में वह गोलियों से नहीं डरा था। फ्रांस के यातना शिविर की भयानक ज़िन्दगी के समय भी उसने सिर नहीं झुकाया था। पर अब गेस्टापो के एक आदमी के हाथों में पड़ते ही उसकी नब्ज़ ढीली पड़ गयी थी, और अपनी चमड़ी बचाने के लिए उसने हम सबों के साथ दग़ा की थी। उसका विश्वास और उसका साहस कितना उथला रहा होगा कि थोड़े से मुक्कों से बचने के लिए ही वह टूट गया। जब तक वह दूसरे साथियों के बीच में रहा, अपने जैसे विचारों वाले दूसरे लोगों से घिरा हुआ था, तब तक वह दृढ़ रहा। जब तक वह उनके बारे में सोचता रहा, तब तक वह मज़बूत रहा। पर जैसे ही वह अकेला पड़ा और शत्रु ने अकेले में उसे कुरेदना शुरू किया, वैसे ही वह अपनी सारी शक्ति खो बैठा, क्योंकि वह अपने बारे में सोचने लगा। अपनी जान बचाने के लिए उसने अपने साथियों को दुश्मन के हवाले कर दिया, कायरता के आगे घुटने टेक दिये और कायरता के वशीभूत होकर विश्वासघात किया।

वह भूल गया कि अपने कमरे में पाये गये काग़ज़ों का मतलब बताने के बजाय उसका मर जाना बेहतर होता। उसने एक-एक बात उन्हें बता दी। उसने उन्हें नाम दे दिये और वे पते बता दिये जहाँ लोग छिपकर रहते थे। गेस्टापो के एक एजेंट को वह श्ताइच से मुलाकात कराने ले गया। उसने वाक्लावेक और क्रोपाचेक से मिलने के लिए पुलिसवालों को द्वोराक के घर भेजा। उसने एनी को पकड़ाया। लिदा नामक एक वीर लड़की के साथ, जो उससे प्यार करती थी, उसने दग़ा की। जो कुछ वह जानता था, उसका आधा तो उसने थोड़े से घूँसे पड़ते ही उगल दिया। और जब उसे लगा कि मैं मर चुका हूँ और अब कोई ऐसा आदमी नहीं है जिसके आगे उसे जवाबदेह होना पड़ेगा, तो बाकी बातें भी उसने कबूल दीं।

उनकी इन बातों ने मुझे नुकसान नहीं पहुँचाया। मैं तो गेस्टापो के हाथों में पड़ ही चुका था और अब मुझे क्या चीज़ नुकसान पहुँचा सकती थी? पर उसकी बातों ने और बहुत-सी जाँच-पड़ताल के लिए बुनियाद तैयार कर दी थी। उनसे प्रमाणों का एक ऐसा सिलसिला शुरू होता था जो मुझ तक आ पहुँचता था। उसने उन्हें वे बातें बतायी जिन्हें सुनकर उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। क्या मैंने, और प्रायः हर टुकड़ी के अधिकांश लोगों ने इसी के लिए मार्शल-लॉ के वे दिन काटे थे? उसके और मेरे चले जाने के बाद मेरी टुकड़ी तो चलती नहीं रह सकती थी। लेकिन अगर उसने अपना मुँह बन्द रखा होता, तो उसकी दूसरी टुकड़ी चलती रहती और उसके और मेरे मर जाने के बहुत दिनों बाद तक भी काम करती रहती।

एक कायर अपनी ज़िन्दगी से कहीं ज़्यादा दूसरी चीज़ों को नुकसान पहुँचाता है। और इस आदमी ने तो एक शानदार सेना को त्यागकर एक घृणिततम शत्रु के आगे आत्म-समर्पण किया था। कहने को वह आज भी जीवित है, लेकिन वास्तव में वह मर चुका है, क्योंकि उसने अपनी टुकड़ी से अपने आपको अलग कर लिया है। बाद में उसने प्रायश्चित करने की कोशिश की, पर उसे फिर कभी वापस नहीं लिया गया। इस प्रकार का बहिष्कार दूसरी जगहों की अपेक्षा जेल में सहन करना कहीं अधिक कठिन है।

डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

एक बार फिर देश को दंगों की आग में झोंककर चुनावी जीत की तैयारी

(पेज 1 से आगे)

बात समझ में आ चुकी है कि 80 सांसदों वाले उत्तर प्रदेश में साम्प्रदायिक फासीवादी लहर भड़काये बग़ैर केन्द्र की सत्ता में आने का सपना सपना ही रह जायेगा। यही कारण है कि पिछले दो से तीन वर्षों में उत्तर प्रदेश के कई शहरों में साम्प्रदायिक दंगे भड़काने की भरपूर कोशिशें की गयीं, जैसे कि बरेली, फैज़ाबाद, गोरखपुर आदि। ऐसे ही प्रयास राजस्थान और मध्यप्रदेश में भी जारी रहे।

भाजपा के हिन्दुत्ववादी एजेण्डे की तरफ खिसकने की प्रक्रिया और उसकी सफलता की सम्भावना बढ़ाने की प्रक्रिया को हमेशा की तरह न सिर्फ़ हिन्दू कट्टरपन्थी ताक़तें बल दे रही हैं, बल्कि मुस्लिम कट्टरपन्थी ताक़तें भी इसमें पूरी मदद कर रही हैं। क्योंकि वास्तव में जब भी साम्प्रदायिक फासीवाद पनपता है, तो उससे केवल बहुसंख्यवादी हिन्दुत्व फासीवाद को ही नहीं, बल्कि अल्पसंख्यवादी इस्लामी कट्टरपन्थी फासीवाद को भी खाद-पानी मिलता है। पूँजीवादी व्यवस्था का संकट बढ़ने से एक ख़तरा इस्लामी कट्टरपन्थियों के सामने भी पैदा हो गया था। ये सारे कठमुल्ले जानते हैं कि अगर व्यवस्थागत संकट बढ़ेगा तो जनता वर्गीय गोलबन्दी की तरफ आगे बढ़ सकती है। अगर हिन्दू और मुसलमान ग़रीब जनता अपने आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर एकजुट और गोलबन्द होने लगे तो हिन्दुत्वादी कट्टरपन्थियों के साथ-साथ मुस्लिम कट्टरपन्थियों की दुकानें भी तो बन्द हो जायेंगी। इसलिए इसी समय सारे मुस्लिम कट्टरपन्थी भी जाग उठे हैं। वे ऐसे बयान क्यों दे रहे हैं? ताकि मज़दूरों, आम मेहनतकश जनता और विशेष तौर पर जो एक बड़ी टटपुँजिया वर्गों की आबादी इस देश में है, उसे धार्मिक और साम्प्रदायिक लाइन पर बाँटा जा सके। फिर से दंगे भड़कें, फिर लाशों से सड़कें पट जायें, फिर से महिलाओं के साथ बलात्कार हो, फिर से मेहनतकशों का क़त्ल और विस्थापन हो! और एक बार फिर से 'खून की बारिश से वोटों की फसल लहलहाए।' हम मज़दूर साथियों और आम मेहनतकशों से पूछते हैं कि ऐसे भड़काऊ बयानों पर अपने ख़ून में उबाल लाने से पहले ख़ुद से पूछिये: क्या ऐसे दंगों में कभी तोगड़िया, ओवैसी, राज ठाकरे, आडवाणी या मोदी जैसे लोग मरते हैं? क्या कभी उनके घर की औरतों के साथ बलात्कार, उनके घर के बच्चों का क़त्ल होता है? नहीं साथियो! इसमें हम मरते हैं, हमारे लोगों की बेनाम लाशें सड़कों पर पड़ी धू-धू जलतीं हैं। सारे के सारे धार्मिक कट्टरपन्थी तो भड़काऊ बयान देकर अपनी ज़ेड श्रेणी की सुरक्षा, पुलिसवालों और गाड़ियों के रेले के साथ अपने महलों में वापस लौट जाते हैं! और हम? हम उनके झाँसे में आकर अपने ही वर्ग भाइयों से लड़ते हैं! और इसका फ़ायदा किसे मिलता है? इसका फ़ायदा मिलता है इस देश की सत्ता पर विराजमान हिन्दू और मुसलमान शासकों को, मन्त्रियों-नेताओं को, व्यापारियों-व्यवसायियों को, तरह-तरह के दलालों, ठेकेदारों को और पूँजीपति घरानों को!

एक तरफ जहाँ भाजपा जैसी साम्प्रदायिक फासीवादी ताक़तें एक बार फिर से धार्मिक कट्टरपन्थी फासीवादी उन्माद भड़काकर, दंगे फैलाकर, और जनता की लाशों पर रोटी सेंकते हुए सत्ता में आने की तैयारी में लगी हुई हैं, वहीं कांग्रेस ने भी नरम हिन्दू कार्ड खेलने के साथ ही मुसलमानों को भरमाने के उपक्रम भी शुरू कर दिये हैं। सबसे अच्छी नीति उसके लिए यही है कि सेक्युलरिज़्म की बातें करते हुए, जब ज़रूरत हो तो हिन्दुओं को रिझाने के लिए कुछ कदम उठा दो, और जब ज़रूरत पड़े तो अपने आपको साम्प्रदायिक फासीवाद का एकमात्र विकल्प साबित कर दो। इसके साथ उसने खाद्य सुरक्षा विधेयक जैसी कुछ लोकलुभावन नीतियों की बात भी शुरू कर दी है। लेकिन कांग्रेस ने अपने सारे पत्ते खोलने की बेवक़ूफ़ी नहीं की है। भाजपा अगर हिन्दुत्व के मुद्दे पर खुलकर वापस लौटती है, तो कांग्रेस इसका भी लाभ उठाने की कोशिश करेगी। कुल मिलाकर साम्प्रदायिक फासीवाद और दंगों का फ़ायदा अगर भाजपा को मिलेगा तो कांग्रेस को भी मिलेगा।

आज पूँजीवादी राजनीति के सामने जो संकट खड़ा है, वह समूची पूँजीवादी व्यवस्था के संकट की ही एक अभिव्यक्ति है। संसद और विधानसभा में बैठने वाले पूँजी के दलालों के पास कोई मुद्दा नहीं रह गया है; जनता में असन्तोष बढ़ रहा है; दुनिया के कई अन्य देशों में जनविद्रोहों के बाद शासकों की नियति भारत के पूँजीवादी शासकों के भी सामने है; इससे पहले कि जनता का असन्तोष किसी विद्रोह की दिशा में आगे बढ़े, उनको धार्मिक, जातिगत, क्षेत्रगत या भाषागत तौर बाँट दिया जाना ज़रूरी है। और इसीलिए अचानक आरक्षण का मुद्दा, राम-मन्दिर का मुद्दा, मुसलमानों की स्थिति का मुद्दा फिर से राष्ट्रीय पूँजीवादी राजनीति में गर्माया जा रहा है। तेलंगाना से लेकर बोडोलैण्ड और गोरखालैण्ड के मसले को भी केन्द्र में बैठे पूँजीवादी घाघ हवा दे रहे हैं। जो संकट आज देश के सामने खड़ा है, उसके समक्ष दोनों ही सम्भावनाएँ देश के सामने मौजूद हैं। एक सम्भावना तो यह है कि सभी प्रतिक्रियावादी ताक़तें देश की आम मेहनतकश जनता को बाँटने और अपने संकट को हज़ारों बेगुनाहों की बलि देकर टालने की साज़िश में कामयाब हो जाये। और दूसरी सम्भावना यह है कि हम इस साज़िश के ख़िलाफ़ अभी से आवाज़ बुलन्द करें, मेहनतकशों को जागृत, गोलबन्द और संगठित करें। देश का मज़दूर वर्ग ही वह वर्ग है जो कि फासीवाद के उभार का मुकाबला कर सकता है, बशर्ते कि वह ख़ुद अपने आपको इन धार्मिक कट्टरपन्थियों के भरम से मुक्त करे और अपने आपको वर्ग चेतना के आधार पर संगठित करे।

आख़िर कब खोलोगे अन्धी आस्था की पट्टी अपनी आँखों से?

(पेज 1 से आगे)

आरोप लगे थे और आसाराम के एक करीबी आश्रम कर्मचारी ने उनके दुष्कर्मों का खुलासा किया था। अभी जोधपुर में अपने आश्रम की जिस 13 वर्षीय लड़की ने उन पर बलात्कार का आरोप लगाया है, उसने ख़ुद पुलिस में रिपोर्ट लिखायी है। बलात्कार सम्बन्धी क़ानून के तहत पीड़ित स्त्री का बयान ही गिरफ़्तार करने के लिए काफी माना जाता है। लेकिन इस ढोंगी बाबा को गिरफ़्तार करना तो दूर, पुलिस ने अब तक उससे पूछताछ भी नहीं की है। ये वही आसाराम बापू है जिस पर आश्रम के लिए किसानों की ज़मीन कब्ज़ा करने से लेकर अपने आश्रम के कर्मचारी की हत्या कराने जैसे गम्भीर आरोप लगे हैं। लोगों को भक्ति और त्याग के प्रवचन देने वाले इस बाबा के पास अरबों-खरबों की सम्पत्ति है। मर्दानगी की दवा से लेकर चूरन-साबुन तक के कारोबार से ही सैकड़ों करोड़ की कमाई होती है। धर्म और धन की ताक़त से हर काले कारनामे पर पर्दा डाल दिया जाता है।

इस बार भी साधु-सन्त और हिन्दू धर्म का झण्डा ढोने वाले संगठन पूरी बेशर्मी के साथ आसाराम के समर्थन में खड़े हो गये हैं। हिन्दू संस्कृति की रक्षा का दावा करने वाले विश्व हिन्दू परिषद के नेता अशोक सिंघल खुल्लमखुल्ला आसाराम के बचाव में आ गये हैं। भाजपा और संघ के तमाम हिन्दुत्ववादी संगठनों के कार्यकर्ता दिल्ली की सड़कों पर बलात्कारी बाबा के पक्ष में प्रदर्शन करने उतर आये। और भला उनसे उम्मीद ही क्या की जा सकती है? देश में "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" और धार्मिक उन्माद के ध्वजाधारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक मोहन भागवत ने 16 दिसम्बर के सामूहिक बलात्कार की घटना के बाद कहा था कि बलात्कार की बढ़ती घटनाओं का कारण यह है कि उस भारतीय परम्परा का पालन नहीं हो रहा है जिसके अनुसार स्त्रियों को सिर्फ़ गृहिणी होना चाहिए! बाहर निकलने और कमाने की ज़िम्मेदारी केवल मर्दों की होनी चाहिए। वे यह भी बोले कि पश्चिमी मूल्यों के प्रभाव के कारण स्त्री-विरोधी अपराध हो रहे हैं और इसीलिए वे 'भारत' में नहीं हो रहे हैं, 'इण्डिया' में हो रहे हैं! हिटलर और मुसोलिनी के विचारों में यक़ीन रखने वालों से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है? हिटलर और मुसोलिनी भी यही कहते थे कि स्त्रियाँ घर सम्भालने और बच्चा पैदा करने का यन्त्र हैं। ज़ाहिर है, जर्मन और इतालवी फासीवाद की जारज भारतीय औलादों से स्त्रियों के प्रति और किसी नज़रिये की उम्मीद नहीं की जा सकती। सबसे शर्मनाक यह है कि संघ को अपना मार्गदर्शक संगठन बताने वाली भाजपा की महिला नेता भी संघी नेताओं और हिन्दू बाबाओं के स्त्री-विरोधी अपराधों और बयानों के समर्थन में खड़ी हो जाती हैं। जब गुजरात में नरेन्द्र मोदी की देखरेख में विहिप और बजरंग दल के गुण्डों की अगुवाई में पागल भीड़ सड़कों पर औरतों का बलात्कार कर रही थी और तलवारों से गर्भवती स्त्रियों का पेट चीरकर अजन्मे शिशुओं को मार रही थी तब भी ये तथाकथित महिला नेत्रियाँ चुप थीं और अब उसी मोदी को प्रधानमंत्री बनाने का समर्थन कर रही हैं।

सवाल सिर्फ़ एक बाबा या सिर्फ़ हिन्दू धर्म का नहीं है। न जाने कितने ईसाई पादरियों पर बच्चों और ननों के यौन शोषण के आरोप लगे हैं। मौलवी और इमाम भी इसमें पीछे नहीं हैं। स्त्री-विरोधी बयान और फतवे जारी करने में इस्लामिक कट्टरपंथी मुल्ले कब पीछे रहते हैं? कभी जमात-ए-इस्लामी हिन्द के कठमुल्ले ऐलान करते हैं कि स्त्री-विरोधी अपराधों को रोकने के लिए स्त्रियों और पुरुषों की बचपन से अलग पढ़ाई होनी चाहिए, तो कभी कोई कट्टरपंथी नेता बयान देता है कि लड़कियों को मोबाइल फोन पर बात करने की इजाज़त नहीं होनी चाहिए।

हमारे देश की नेताशाही की भी सोच धार्मिक कट्टरपंथियों और रूढ़िवादियों से भिन्न नहीं है। जब पूरा देश अपनी एक बेटी के बलात्कार और हत्या के ख़िलाफ़ सड़कों पर उबल रहा था, उसी समय इस देश की संसदों-विधानसभाओं में बैठने वाले तथाकथित जनप्रतिनिधि क्या कह रहे थे? ममता बनर्जी ने कहा कि आधी रात को लोग हाथों में हाथ डालकर घूमेंगे तो ऐसी घटनाएँ तो घटेंगी ही; तृणमूल कांग्रेस के एक अन्य नेता ने कहा कि स्त्रियाँ जब सीमा पार करेंगी तो उनके साथ बलात्कार ही होगा; एक भाजपा नेता ने कहा कि महिलाओं को लक्ष्मण रेखा नहीं लाँघनी चाहिए; राजस्थान के एक कांग्रेस नेता ने कहा कि स्त्रियों के स्कर्ट पहनने पर रोक लगा दी जानी चाहिए; एक सपा नेता ने लड़कियों के मोबाइल प्रयोग और जींस पहनने पर पाबन्दी लगाने की माँग की! और ये वे लोग हैं जिन पर खुद पोर्न फिल्म बनाने, बलात्कार करने, दहेज़ के लिए जलाकर मारने, छेड़खानी और यौन-उत्पीड़न करने के आरोप दर्ज़ हैं! संसद में 286 ऐसे सांसद हैं जिन पर स्त्री-विरोधी अपराधों के लिए मुकदमे चल रहे हैं! राज्यसभा के उपाध्यक्ष और कांग्रेसी सांसद पीजे कुरियन पर सामूहिक बलात्कार में शामिल होने का गम्भीर आरोप है।

ज़ाहिर है कि हम इन स्त्री-विरोधी, रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी, तानाशाहाना, और बर्बर ताक़तों से यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वे स्त्री के अधिकारों का सम्मान करेंगी, स्त्रियों को समानता का हक़ देंगी, उनकी सुरक्षा के इन्तज़ाम करेंगी, या उन्हें समाज में पुरुषों के समान मानेंगी! यही तो वे ताक़तें हैं जो स्त्री की गुलामी के लिए ज़िम्मेदार हैं, यही तो वे लोग हैं जो स्त्री-विरोधी अपराधों के लिए जवाबदेह हैं और अक्सर स्वयं उन्हें अंजाम देते हैं, यही तो वे लोग हैं जो स्त्रियों को पुरुषों की दासी समझते हैं और उन्हें पैर की जूती बनाकर रखना चाहते हैं! इनसे भला क्या उम्मीद की जा सकती है? कुछ भी नहीं! हम एक ही चीज़ कर सकते हैं: इस समाज के सभी विद्रोही, संवेदनशील और न्यायप्रिय युवा और युवतियाँ, मेहनतकश और आम मध्यवर्गीय नागरिक सदियों पुरानी रूढ़ियों, कूपमण्डूकताओं, पाखण्ड और ढकोसलेपंथ के इन अपराधी ठेकेदारों की बन्दिशों को उखाड़ कर फेंक दें, इन्हें तबाह कर दें, नेस्तनाबूद कर दें! ये हमारे देश और समाज को पीछे ले जाने वाले प्रतिक्रियावादी हैं, राष्ट्रवादी या देशभक्त नहीं! आगे अगर हम ऐसे धार्मिक कट्टरपंथियों, बाबाओं, स्त्री-विरोधियों की कोई भी बात या प्रवचन सुनते हैं, तो हममें और भेड़ों की रेवड़ों में कोई फ़र्क नहीं रह जायेगा! अगर हम इन अन्धकार की ताक़तों के ख़िलाफ़ उठ नहीं खड़े होते तो सोचना पड़ेगा कि हम ज़िन्दा भी रह गये हैं या नहीं!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006